प्रकाशक
मैनेजर
इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
गनपत रोड,
लाहौर

मुद्रक:—
पं० मणिशंकर मालवीय
अभ्युदय प्रेस,
इलाहाबाद

नन्हे नीरज को

जिसकी किलकारियाँ नाटककार की उड़ान में
वास्तविकता के पङ्ख लगाती रही हैं

पेछले बसन्त मेरे आँगन के पेड़ में एक कोंपल फूटी थी। मन
मूचा साहस बटोरकर काँपती हुई अँगुलियों से मैंने उसे तोड़ा
तारों की छाँह के सहारे ऊँघते हुए पुजारियों से आँख चुराकर
रणों में रख दिया। वह एक पागल का प्यार था। एक
ख्वन की पूँजी थी। उसे लेकर तेरे ओठों पर जो मुस्कराहट
ाई थी, वही मेरी पूजा का पुरस्कार था।
श्रीहर्ष में एक कोमल हृदय का संगीत था। मानव के मर्म से
त का एक अमर सन्देश मुखरित हुआ था। युद्ध लिप्सा पर
सा के चिरन्तन सत्य ने विजय पाई थी। नाटक की सफलता
बधाई देते हुए रायकृष्णदास जी ने लिखा था—
'हमारे साहित्य में नाटकों की संख्या उसकी प्रगति के अनुरूप
है। सम्भवतः नाटक-रचना में अपेक्षाकृत अधिक कौशल की
श्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्था में हम 'श्रीहर्ष' का हार्दिक
त करते हैं। श्री दुग्गल की कृति इस कारण भी स्वागतार्थ है
उन्होंने ऐसा विषय लिया है जिस पर क़लम चलाना सहज नहीं।
हासिक चित्र को सफलतापूर्वक अंकित करना ज़रा टेढ़ी खीर है।
दुग्गलजी की रचना की सफलता पर हम उन्हें बधाई देते हैं।'
और आज दो साल की मौन-साधना के पश्चात् मैं फिर एक
हासिक लड़ी से तेरा स्वागत करने आया हूँ। रणभेरी का तुमुल
करते हुए मैंने प्यारे भारत के विस्मृत किन्तु अमर देवों पर
नी श्रद्धा की ये चार अस्फुट कलियाँ चढ़ाई हैं। यह मेरी दूजी
है। कैसी कुछ बन पड़ी है—इसका निर्णय तो समय करेगा।
केवल इतना कहूँगा कि यह जो कुछ है मेरा है। मेरा अपना है।

अपनी साधना के इस चित्र की तैयारी में मैंने अपने मानस की गहराइयों में पैठकर रँग उतारे हैं। कूँची के एक-एक टच से कला के पैर पखारने का प्रयास किया है।

आंग्रे सरदार मराठा भारत की वीरता के प्रतीक हैं। जिस चिनगारी से रिक्त मानव-जीवन विरस और धुंधला हो जाता है, वही उनमें है। पत्थरों से टकरा जाने की हौंस, एकाकी बीहड़ यात्रा करने का अरमान, मृत्यु से जूझने की अटूट हिम्मत—यह सब जाने उनमें मूर्तिमान हो उठा है। शीतला में नारी का सहज रूप है। सारन्धा महोबा की पुण्यस्थली को पावन करनेवाली एक अग्निशिखा है जिसके समीप मृत्यु की क़ीमत जीवन से कहीं अधिक है। पुष्यमित्र शुंग भारत की दृढ़ता के अद्वितीय प्रमाण हैं।

भारत के खँडहरों में अपनी पुरानी निधियाँ खोजने का पागलपन मुझे अधिक है। इतिहास की सँकरी पृष्ठ-भूमि में सीमित रहकर ही मैंने अपने उपकरण जुटाये हैं। और मुझे किसी चीज की व . नहीं रही।

मेरी सफलता की कसौटी तुम्हारी एक मृदु मुस्कान है माँ।

आन

राजपूताना के इतिहास का एक लाल पन्ना।

एक बुंदेला नारी की अमर-गाथा

अभिनय-काल—३० मिनट

पात्र-परिचय

चम्पतराय	पहले डाकू, बाद में बुन्देलानरेश
सारन्धा	चम्पतराय की पत्नी
अनिरुद्ध सिंह	टेकड़ी गढ़ का क़िलेदार
शीतला	अनिरुद्धसिंह की पत्नी
लेखा	चम्पतराय की माँ
छत्रसाल	सारन्धा का पुत्र
चन्दन	चम्पत का एक साथी सरदार
औरंगजेब	दिल्ली का सम्राट्
मीर जुमला	औरंगजेब का सेनापति
वली बहादुर	शाही सैनिक
जांबाज	वली बहादुर का घोड़ा

पहला दृश्य

समय—सन्ध्या

[टेकड़ी गढ़ के दुर्ग के बाहर के आँगन में शीतला और सारन्धा। शीतला अधेड़ आयु की नारी—गार्हस्थ्य की चिन्ताओं से ललाट पर एक रेखा। सारन्धा सोलह वर्ष की वीरबाला-जीवन की चलती-फिरती प्रतिमा]

सारन्धा—भाभी, तुम हर समय चिन्तित-सी क्यों रहती हो? तुम्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता ?

शीतला—पगली कहीं की ! क्या नहीं अच्छा लगता ? मुझे तुम बहुत अच्छी लगती हो। यह दुर्ग बहुत अच्छा लगता है।

सारन्धा—और भैया ?

शीतला—मुझे तुम सब बहुत अच्छे लगते हो। देखो सारन्धा, तुम्हारे भैया अभी तक समरागंण से नहीं लौटे। यहाँ दुर्ग में बिलकुल सूना है। हम नारियाँ आखिर अबला ही तो हैं।

सारन्धा—(कटार निकालकर) देखो भाभी, यह है हमारी जीवन-साथिन। किसी के बल पर जीना भी कोई जीना है ?

शीतला—नहीं सारन्धा, अभी तुम बच्ची हो। बहिन और पत्नी के अन्तर को अभी तुम नहीं समझ सकतीं और फिर यह युद्ध तो मानवता के नाश का एक यन्त्र है। ये कटारें और कृपाणें तो अभिशाप मात्र हैं।

सारन्धा—क्या कह रही हो भाभी ? यह कटार ही तो हमारी गर्दनों को गर्व से उन्नत रखती है।

शीतला—नारी की गर्दन नीची अधिक सुन्दर लगती है सारन्धा। उसकी नीची नज़र से ही तो पुरुष की गर्दन ऊपर रहती है। और पुरुष उसका सब कुछ है। उसका देवता।

सारन्धा—तुमने किस देश में जन्म लिया है भाभी ? जौहर की ज्वाला पर नाचनेवाली क्षत्राणियों के चट्टानी कलेजे की जगह यह मोम कैसा ? उस दिन कहीं मेरी नज़र नीची होती तो डाकू चम्पतराय दुर्ग की ईंट से ईंट बजा देता।

शीतला—डाकू चम्पतरात ने स्त्रियों पर हाथ उठाना सीखा ही नहीं।

सारन्धा—ठीक है, किन्तु सब हाथों में ऐसा नियन्त्रण नहीं हुआ करता। (दहिनी आँख पर हाथ रखते हुए) आज यह अपशकुन का अंग-स्फुरण हो रहा है।

(अनिरुद्धसिंह का प्रवेश। वस्त्र भीगे हैं। आँखें नीची हैं)

सारन्धा—भैय्या, यह क्या ?

शीतला—स्वामी तुम आ गए ? बहुत अच्छा हुआ।

सारन्धा—यह वस्त्र गीले हैं भैया ? यह सब मैं क्या देख रही हूँ ?

अनि० सिं०—नदी तैरकर आया हूँ।

सारन्धा—और सेना ?

अनि० सिं०—युद्ध-स्थल में बिछ गई।

सारन्धा—और तुम भाग आए ? भैया, भविष्य तुम्हारा नाम लेकर थूक दिया करेगा। राष्ट्र की स्वर्णिम पृष्ठ-भूमि पर तुमने कालिख उँडेल दी है। टेकरी गढ़ को देखकर लोगों की आँखें नीची हो जाया करेंगी।

शीतला—सारन्धा, क्या बहकी-बहकी बातें करती हो ?

सारन्धा—चुप रहो भाभी। (अनिरुद्ध को देखकर) लाओ भैया, यह कृपाण मुझे दो। तुम चूड़ियाँ पहनकर अन्तःपुर में रहो। रणभूमि से लौट आनेवाले दिलेर भैया, बहिन तुम पर नाज़ कर सकती है।

अनिरु० सिं०—बहिन, सेना मौत की गोद में लेट गई थी। अकेला तुम्हारा भैया क्या कर सकता था ?

सारन्धा—यह भी मुझे बताना होगा ? वह कट सकता था। मर सकता था। टुकड़े-टुकड़े हो सकता था। किन्तु भाग नहीं सकता था।

अनिरु० सिं०—यह सब होगा बहिन। मैं जाता हूँ।

शीतला—स्वामी, मत जाओ। सारन्धा तो पगली है।

अनि० सिं०—स्वदेश को ऐसे ही पगलों की तो ज़रूरत है। चिन्ता न करो शीतला। (जाता है)

सारन्धा—देखी राजपूती लहू की गर्मी ?

शीतला—तुमसे भैया का जीवन भी न देखा गया सारन्धा ?

सारन्धा—मुझसे उसकी मृत्यु न देखी गई शीतला। मैंने चाँद से कलङ्क उतार फेंका।

शीतला—हम राजपूतों का जीवन वीरता के दम्भ पर खड़ा है। एक ही व्यक्ति हज़ारों से लड़ता हुआ कट मरे ? राजनीति तो नाम मात्र को भी हममें नहीं है।

सारन्धा—हम तो धर्म-युद्ध लड़ते हैं भाभी। और इसी लिए तो हम जीवित हैं।

शीतला—ज़रा अपने आपको मेरे स्थान पर बिठाकर देखो सारन्धा।

सारन्धा—मातृ-सेवा सर्वश्रेष्ठ है भाभी, शेष सब पीछे।

शीतला—तुम इस सिंदूर की क़ीमत नहीं जानती सारन्धा। तुमने अपने भैया को रणस्थल में भेजकर अपनी भाभी की शान्ति छीन ली है।

सारन्धा—देश के सिपाहियों के दिल की जगह तो तड़पता हुआ पारा रहता है भाभी। उनकी शान्ति तो देश के साथ है।

शीतला—सारन्धा, यदि तुम्हारे पति होते तो क्या तुम ऐसा ही आचरण करतीं ?

सारन्धा—मैं उसके कलेजे में छुरी घोप देती। (प्रस्थान)

शीतला—क्या कुछ होने वाला है ? स्वामी तुम शीघ्र लौटना।

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

समय—सन्ध्या

[चित्तौड़ गढ़ से तीन मील पर [illegible] की गुफा के अन्दर शिव-मन्दिर। लीला [illegible] बैठी है। [illegible] हुआ है। गुफा में अँधेरा सा छाया है।]

लीला—(गाती है)

नाचो शिव नाचो प्रलयङ्कर !!

जितना अशिव अमङ्गल जग में,
जितना विष मानव की रग में,
भर भर गरल कपाल पियो शिव
भरा अमंगल जो सब जग में।

डमरू पकड़ो भोले शङ्कर।
नाचो शिव नाचो प्रलयङ्कर॥

टूट पड़ें अम्बर से तारे,
ज्योति-पिण्ड मिट जावें सारे,
महानाश की महा निशा में,
ताण्डव अपने पंख पसारे।

ऐसा नाचो नाच भयङ्कर।
नाचो शिव नाचो प्रलयङ्कर॥

छाती पर रुण्डों की माला,
हाथों में लोहू का प्याला,
मानवता का नव-निर्माता
बन कर उगलो अन्वज्वाला।

खोलो तीजा लोचन शङ्कर।
नाचो शिव नाचो प्रलयङ्कर॥

(चन्दन का प्रवेश। एक बलिष्ठ युवक। आयु २२ वर्ष)

चन्दन—ऐसा गाना न गाओ माँ।

लेखा—क्यों ?

चन्दन—रुद्र का क्रोध मानवता का नाश कर देगा।

लेखा—वह तो हो चुका है चन्दन।

चन्दन—क्या ?

लेखा—मानवता का नाश। कहाँ है मानवता ? वह तो रणभूमि की मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। मनुष्य कितना हिंस्र हो गया है ?

चन्दन—ठीक है माँ।

लेखा—यह दिन भी देखना था चन्दन। चम्पतराय जैसा आजादी का मतवाला राजपूत जागीर के लालच में शाहजहान का दास बन गया। इस शिव-मन्दिर में हम तीन जीव क्या नहीं रह सकते थे ? महेश तो सबको शरण देते हैं चन्दन।

चन्दन—अभी तक चम्पतराय नहीं आया ?

लेखा—जिसकी जीभ पर शाही नमक लग जाय उसकी गर्दन बिक जाती है चन्दन। वह बादशाह का नौकर भर रह जाता है। नौकर।

(घोड़े की टाप की आवाज़)

चन्दन—चम्पतराय आ रहा है।

लेखा—हाँ।

(चम्पतराय मन्दिर में आता है। शिवलिंग के सामने माथा टेकता है और जाने लगता है।)

लेखा—चम्पत बेटा !

चम्पतराय—कहो माँ।

लेखा—क्या बात है ?

चम्पतराय—कुछ नहीं।

लेखा—अब तुम शाही सेना के नायक बन गये हो, क्या इसीलिए हम लोगों से..................।

चम्पतराय—[illegible] मैं [illegible] का अपमान नहीं।

लेखा—किन्तु आज यह [illegible] कहाँ है बेटा?

चम्पतराय—मैं बड़ी मुश्किल में हूँ माँ। तुम नहीं समझोगी।

लेखा—क्या माँ से भी कुछ छिपाया जाता है बेटा? अपनी मुश्किल मुझसे कहो।

चम्पत—नन्दन, तुम जरा बाहर जाओ।

[नन्दन का प्रस्थान]

चम्पतराय—दिल कड़ा कर लो माँ।

लेखा—मेरा दिल तो पत्थर का बना है चम्पत। देश की बलिवेदी पर मैं तुम्हारी लाश देखकर भी बर्दाश्त कर सकती हूँ बेटा।

चम्पतराय—टेकड़ी गढ़ का दुर्ग देखा है न?

लेखा—हाँ हाँ।

चम्पतराय—आज के युद्ध में वहाँ का दुर्गाधीश अनिरुद्ध सिंह अकेला ही शाही सेना से लोहा लेने आया। वह रुद्र का तीसरा नयन बनकर हमारी सफों पर टूट पड़ा। उसके मस्तक पर रोली का तिलक था माँ। जननी के लिए लड़नेवाले उस सच्चे सिपाही के चरणों में एक बार तो लोट जाने की इच्छा होती थी। किन्तु मेरा एक तीर सीधा उसके माथे में घुस गया। माँ, तुम रो रही हो?

लेखा—भाई ने भाई का गला काट दिया?

चम्पतराय—वह तड़पकर गिर गया। मैंने पागल की भाँति उस वीर के पाँव को पकड़ लिया। और फिर·········।

लेखा—कहते जाओ चम्पत।

चम्पतराय—फिर कहते नहीं बनता माँ। उसने आँखें उघाड़कर मुझे देखा—जाने कह रहा हो—'चम्पत तुम शाही सेना के नायक?' मेरी आँखें नीचे गड़ गईं। मैंने डोली में उसे टेकड़ी गढ़ पहुँचाने का प्रबन्ध किया। मैंने शीतला के सिर का सिंदूर अपनी अँगुली से

मिटा दिया माँ। उसकी चूड़ी तोड़ दी। अन्तिम साँस तोड़ने से पहिले उसने मेरे हाथ में........

लेखा—क्या ?

चम्पतराय—उसने मेरे हाथ में अपनी वीर वहिन सारन्धा की कोमल कलाई पकड़ाकर कहा—'चम्पत, तुम वीर हो। मैं तुमसे एक भिक्षा माँगता हूँ। सारन्धा का हाथ जीवनभर न छोड़ना भैया।' आन की आन में साँस उखड़ा। दो चमकती हुई आँखें सदा के लिए बन्द हो गईं। मैं यह सब न देख सका। शीतला नहीं रोई। वह चट्टान बन गई। मैं क्या करूँ माँ ?

(प्रस्थान)

लेखा—नारी का सृजन करके विधाता ने एक बहुत बड़ा अपराध किया है। तुम लोग वीर बनते हो। लोगों के गले काटकर प्रसन्न होते हो। किन्तु क्या तुम यह भी सोचते हो कि तुम किसी का कलेजा चीर गये हो। किसी की माँग पर कालिख पोत गये हो। किसी के दिल का मांस-खण्ड छेदकर उसमें कङ्कर रख गये हो। (शिवलिंग की ओर देखकर) शङ्कर, तुम यह सब देख रहे हो ? तुम तो अमर हो न ? तुम्हारी पार्वती की माँग तो अमिट है देव। इसीलिए।

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

समय—ऊषा काल

[चम्बल नदी के किनारे अपने शिविर के बाहर बादशाह औरंगजेब अपने सेनापति मीर जुमला के साथ वार्तालाप के सूत्र में......]

औरंगजेब—मीर साहिब, आप अक्सर मुझसे एक सवाल पूछा करते हैं। आज मैं उसका जवाब देना चाहता हूँ'

मीर जुमला—क्या जहाँपनाह ?

चौथा दृश्य

समय—प्रातः

[महोबा की पुण्य वाटिका। प्रातः काल का समय। बालक छत्रसाल एक पत्थर पर अपनी तलवार तेज कर रहा है और गुनगुना रहा है।]

छत्रसाल—(गुनगुनाता है)

चल भवानी रण सिंगारें,
चल किसी का सिर उतारें,
चल मेरी रानी लहू से
आज माँ के पग पखारें।

(लेखा का प्रवेश)

लेखा—छत्रसाल, क्या कर रहे हो ?

छत्रसाल—ओह माँ ? प्यार की बातें कर रहा हूँ।

लेखा—प्यार ? अरे पागल हो गया है क्या ? किससे प्यार की बातें कर रहे हो ?

छत्रसाल—अपनी रानी से।

लेखा—कौन रानी ?

छत्रसाल—(तलवार दिखाकर) यह।

लेखा—अरे ? यह दूसरे हाथ में क्या है ?

छत्रसाल—पत्थर।

लेखा—दिखा तो।

(छत्रसाल पत्थर दिखाता है)

लेखा—(देखकर क्रोध में) हूँ ? पत्थर ? दुष्ट कहीं के ? अ
से शिवजी उठा लाया है ? ला, इधर ला।

छत्रसाल—शिवजी ? (लौटाता है)

लेखा—(शिवजी लेकर) राम, राम, राम ! महेश का इतना अपमान ? अबोध बच्चे, तुम्हारी नस-नस में शरारत समाई रहती है।

छत्रसाल—यह शिवजी हैं माँ ?

लेखा—हाँ, शिवजी। जाने कुछ जानता ही नहीं।

छत्रसाल—देखो माँ, तुम्हें कितने शिवजी चाहिएँ ? तुम इनकी पूजा करती हो न ?

लेखा—चुप रह। आने दे आज चम्पत को।

छत्रसाल—पिताजी कहाँ गये हैं मां ?

लेखा—शिकार खेलने। (जाती है)

छत्रसाल—(तलवार को चूमते हुए) नहीं, नहीं; नाराज़ न होना। देखो भवानी, हम तुम्हें बड़े-बड़े शिवजी ला देंगे।

(नेपथ्य से गान)

रिस रहे दो घाव बाबा······

छत्रसाल—(सुनकर) कौन गाता है ? (प्रस्थान)

(शीतला का गाते हुए प्रवेश)

गान

रिस रहे दो घाव बाबा।
ये न दो नयना हमारे,
ये न नीलम के सितारे,
ये तो दो कङ्कर जगत ने
हाय सिर पर तान मारे
निर्बलों का भाल फोड़ा—यह धनी का चाव बाबा,
रिस रहे दो घाव बाबा॥

(पीछे से सारन्धा और छत्रसाल का प्रवेश। वे दोनों एक पार्श्व में खड़े होकर गाना सुनते हैं।)

दुःख दरदों की कहानी,
यह हमारी जिन्दगानी,

आँसुओं के तोल ताँबा
दे न कोई आज दानी।
और हम भोले न जानें, क्रूर जग के दाँव बाबा।
रिस रहे दो घाव बाबा॥

स्वर्ण के सपने सजाता,
जग सुधा के राग गाता,
और सागर तीर मुझको
भँवर उठ उठकर बुलाता।
मैं न जाने छोड़ देता क्यों पुरानी नाव बाबा।
रिस रहे दो घाव बाबा॥

छत्रसाल—माँ, तुम चुप क्यों हो? और यह तुम्हारी आँखों में आँसू? माँ!

सारन्धा—(आँसू पोंछकर) नहीं बेटा।

शीतला—(पीछे देखकर) ओह सारन्धा? (प्रस्थान)

छत्रसाल—यह कौन थी माँ? तूने इसे बुलाया क्यों नहीं। यह मुझे बहुत प्यार किया करती है। मुझे कहती है—तू अपनी माँ का लाल है। मैं तुम्हारा लाल हूँ न माँ?

सारन्धा—बड़ी लम्बी कहानी है बेटा? आओ······(प्रस्थान)

(चम्पतराय और चन्दन का प्रवेश)

चम्पतराय—देखो चन्दन, मैंने औरंगज़ेब की सहायता का प्रण दिया है। इसे पूरा करना ही होगा।

चन्दन—अपनी सेना को इस आग में झोंकने से पहले महोबा-नरेश को महारानी से परामर्श ले लेना चाहिए था।

चम्पतराय—महारानी को मनाना पड़ेगा चन्दन। राजपूतों का प्रण पत्थर की लकीर होता है। तुम जाओ सेना इकट्ठी करो और हाँ महारानी को अभी भेजो।

चन्दन—जैसी आज्ञा। (प्रस्थान)

चम्पतराय—दाराशिकोह, तुम बहुत अभागे हो। तुम्हारी क़िस्मत के सितारे पर राजपूतों की तलवारें नाचने लगी हैं।

(रानी सारन्धा का प्रवेश)

सारन्धा—स्वामी।

चम्पतराय—सारन्धा, कुछ सुना ?

सारन्धा—हाँ।

चम्पत—क्या ?

सारन्धा—औरंगज़ेब की सहायता का प्रण।

चम्पतराय—उस पर कुछ सोचा ?

सारन्धा—हाँ।

चम्पतराय—क्या ?

सारन्धा—महोबापति ने यद्यपि बिना सोचे अपना हाथ बढ़ा दिया है, तो भी बेगुनाहों की गर्दनों पर हमारी तलवारें चलेंगी। राजपूतों का प्रण अटल होता है। वह पूरा होगा।

(तुरही बजती है)

सारन्धा—तुरही ? देखो स्वामी, आज शिव के साथ उसकी शक्ति भी जायगी।

चम्पत—क्या मतलब ?

सारन्धा—विलम्ब नहीं होना चाहिए। अच्छा मैं कवच पहन लूं।

(प्रस्थान)

चम्पतराय—शिव की शक्ति! तुम रुद्र-नेत्र की ज्वाला हो सारन्धा।

पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

समय—दोपहर

[युद्धभूमि का एक छोर। बलीबहादुर अचेत अवस्था में पड़ा है। उसका घोड़ा जाँबाज दुम हिला-हिलाकर अपने स्वामी पर से मक्खियाँ उड़ा रहा है। लाशों से भरी हुई पृथ्वी लहू से लाल हो उठी है।]

(दो यवन-सैनिकों का प्रवेश)

पहला—सुब्हान अल्लाह! यह भी कोई लड़ाई थी? जान बची, लाखों पाये।

दूसरा—हम तो औरतों से भी गये-गुज़रे हैं मियाँ। देखा था वह चम्पतराय की रानी सारंगा। बला थी, बला।

पहला—अरे अफ़ीमची के बच्चे। रानी सारन्धा कहो, रानी सारन्धा।

दूसरा—नाम है या शैतान की आँत।

पहला—वह औरत नहीं है भाई।

दूसरा—वही तो मैं कह रहा हूँ। वह तो…वह तो…देखा नहीं था वह किस तरह हमारी फ़ौज में घुसी चली आ रही थी। मेरे तो कँपकँपी छूट गई। मैं तो एकदम ठिठुर गया। हाथ से तलवार गिर गई। इतने में एक राजपूत ने ज़ोर से एक थप्पड़ से गर्दन सीधी कर दी। मैं उसके पावों से लिपट गया [illegible]।

पहला—चम्पतराय के तीर से जख्मी हुए हाथी को छोड़कर जब बलीबहादुर घोड़े पर सवार हो गये और हमारी फ़ौज में [illegible] लगा, तो मैं फुर्ती से एक पेड़ पर चढ़ गया। [illegible] तो [illegible] है। [illegible] मैं [illegible], दो [illegible] पर मैं [illegible] नहीं कह सकता। [illegible] सिर्फ़ [illegible] है। [illegible] दिन [illegible] पड़ता है।

दूसरा—बेशक। बेशक।

पहला—लेकिन एक बात तो पत्थर की लकीर समझो कि अगर आज की लड़ाई में चम्पतराय और उसकी वह बला न होती तो औरंगजेब की फ़ौज को हम नाकों चने चबा देते।

दूसरा—इसमें क्या शक है?

पहला—शाहज़ादा दारा न जाने कहाँ अपना सिर छिपा रहा होगा? सुना है, औरंगजेब ने देहली के तख्त पर क़ब्ज़ा कर लिया है।

(जाँबाज़ की हिनहिनाने की आवाज़)

दोनो—(घोड़े को देखकर) ऐं? बापरे? कब्रिस्तान से किसी की रूह बोल उठी है।

(प्रस्थान)

(सारन्धा और छत्रसाल का प्रवेश)

सारन्धा—यह युद्ध-भूमि है बेटा।

छत्रसाल—इन सबको किसने मारा है माँ? यह, यह···मुझे यह अच्छा नहीं लगता।

सारन्धा—ये सब युद्ध में वीर-गति को प्राप्त हुए हैं बेटा।

छत्रसाल—क्यों?

सारन्धा—अपने देश की आज़ादी को सुरक्षित रखने के लिए शत्रु के साथ जूझ मरे छत्र।

छत्रसाल—तुम क्यों लड़ी थीं और पिताजी क्यों लड़े थे? हमारे देश में तो कोई शत्रु नहीं आया। औरंगजेब के लिए तुमने इतने सिपाही क्यों मरवा डाले?

सारन्धा—तुम बातें बहुत करने लगे हो।

छत्रसाल—माँ, तुमसे जवाब नहीं बन पड़ता। पिताजी भी ऐसे ही चुप हो जाया करते हैं।

सारन्धा—(इधर-उधर देखकर) छत्र, वह देखो घोड़ा।

छत्र—घोड़ा? खूब। (दौड़कर पास जाता है। पीछे-पीछे सारन्धा।)

सारन्धा--(अचेत व्यक्ति को देखकर) ओह बली बहादुर औरंगजेब के दहिने हाथ ? तुम अचेत अवस्था में ?

छत्रसाल--माँ, यह घोड़ा······

सारन्धा—अपने स्वामी के घाव से मक्खियाँ उड़ा रहा है।

छत्रसाल–बहुत सुन्दर घोड़ा है माँ। (रास पकड़ने लगता है। घोड़ा हिनहिनाकर उछलता है)

सारन्धा—ऐसे नहीं। (रास पकड़कर) लो सवार हो जाओ।

छत्रसाल—किन्तु इसका स्वामी ?

सारन्धा—वह अचेत पड़ा है।

छत्रसाल—वह होश में आयेगा।

सारन्धा—युद्ध में आई सामग्री पर विजेताओं का अधिकार होता है बेटा।

छत्रसाल—(सवार होकर) हम विजेता हैं माँ ?

सारन्धा—चिर-विजेता। राजपूत चिर-विजेता होते हैं बेटा।

(प्रस्थान)

वली बहादुर—(कुछ होश में आकर) पानी···पा···नी···ओह जाँबाज !! तुम भी मुझे छोड़कर चल दिये ? (उठकर) जाँबाज, तुम्हारे चोर के परखचे उड़ा दूँगा।

पट-परिवर्तन

छठाँ दृश्य

समय—दोपहर

[टेकड़ी गढ़ के सामने की पगडंडी पर तीन नागरिक]

पहला—वह सारन्धा का बेटा है। उसकी नसों में बुन्देलों का रक्त है।

दूसरा—जाँबाज उनके हाथ क्यों कर लगा ?

तीसरा—युद्ध में अपने स्वामी वली बहादुर के घाव से मक्खियाँ उड़ा रहा था। छत्र को पसंद आया। सारन्धा पकड़कर घर ले गई।

पहला—यह खूब रही।

दूसरा—यह युद्ध-स्थली का न्याय है भाई।

तीसरा—समय बहुत विकट आ रहा है। जाँबाज़ की यह घटना कितनी जानों को समाप्त कर देगी।

पहला—किन्तु जाँबाज़ को छत्रसाल से छीना किसने ?

दूसरा—वली बहादुर के घर के सामने वाले मार्ग पर छत्र जाँबाज़ पर सवार होकर सैर करने निकला था। अवसर पाते ही वली बहादुर ने बच्चे से अश्व छीन लिया।

पहला—एक बच्चे से घोड़ा छीनते उसे शर्म न आई।

दूसरा—नहीं। ये लोग युद्ध लड़ते हैं। मन्दिर में बैठकर शिव को नहीं पूजते। धर्म-युद्ध तो राजपूतों के ही पल्ले पड़ा है।

पहला—अन्त में धर्म-युद्ध की ही विजय होती है।

दूसरा—जी हाँ। औरंगज़ेब ने सर्वप्रथम मुराद को—अपने भाई को—सब्ज़ बाग़ दिखाकर अपने साथ मिलाया। भ्रातृत्व की भीख माँगी। और जब अवसर निकल गया तो सुरा की मस्ती में क़त्ल करवा डाला। और औरंगज़ेब अब बादशाह है। यह सब धर्म-युद्ध ही तो है।

तीसरा—लाख की एक कह गये हो। इन युद्धों में तो विजय उनकी होती है जो उच्च कोटि के धोकेबाज़ और पहले दर्जे के विश्वासघाती हों।

दूसरा—यह बात ?

(शीतला का गाते हुए प्रवेश)

शीतला—(गाती है)

हे उदार करुणावतार,
जग जीवन के कर्णधार।

काँप रही धरणी सारी,
त्रस्त आज सब नर नारी,
हिंसा की रजनी कारी,
छाई कितनी वार पार।
हे उदार करुणावतार॥

उजड़ रहा यह विश्वदीन,
प्रलयङ्कर जीवन नवीन,
आओ मेरे चिर प्रवीण,
खोलो अपने बन्द द्वार।
हे उदार करुणावतार॥

पहला—संन्यासिनी, क्या समाचार है?

शीतला—नागरिक, मानव लड़ने में बड़ा प्रवीण है। उसे एक प्रकार का युद्ध का चस्का पड़ गया है। कुछ सुना तुमने?

दूसरा—नहीं तो।

शीतला—सुनकर करोगे भी क्या?

तीसरा—नहीं, हम अवश्य सुनेंगे।

शीतला—अच्छा तो सुनो। छत्रसाल ने दुसकते हुए रानी सारन्धा से अश्व छिन जाने का समाचार दिया। सारन्धा सिर से पैर तक आग बन गई। औरंगजेब का दरबार लगा था। बिजली की लहर सी वह वहाँ पहुँची। उसे घोड़े के लिए बहुत क़ीमत देनी पड़ी।

दूसरा—क्या?

शीतला—अपनी जागीर।

पहला—एक घोड़े के लिए इतना त्याग?

शीतला—आन के लिए, मर्यादा के लिए—राजा-रानी रङ्क हो गये।

पहला—चम्पतराय कहाँ है?

शीतला—चम्पतराय ने रानी के स्वाभिमान के लिए हँसते-हँसते महोवा छोड़ दिया। पता नहीं इस समय कहाँ वे जीवन के कड़ुवे घोंट पी रहे हैं।

दूसरा—तो क्या चम्पतराय फिर से डाकूवृत्ति ग्रहण करेगा?

शीतला—डाकू बनना क्या बुरा है? ये बहुत बड़े-बड़े व्यक्ति जिन्हें तुम आँखों पर बिठाने को तैयार हो, क्या डाकू नहीं? बिना शस्त्र चलाये ये निर्धनों का लहू चूस जानेवाले कुत्ते क्या डाकुओं से कम हैं? (ऊपर देखकर) ओह! दोपहरी बीत रही है······

(चन्दन का घोड़े की रास पकड़े प्रवेश)

शीतला—चन्दन?

चन्दन—हाँ।

शीतला—तुम यहाँ? अच्छा समाचार लाये हो न?

चन्दन—बहुत अच्छा नहीं। तुम शीघ्रता करो। तुम्हें बुन्देला नरेश बुला रहे हैं। उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं। शिवगुफा छोड़कर वे महारानी के साथ कुछ जानपर खेलनेवाले सैनिक लेकर जंगल में जा रहे हैं। वे छत्रसाल को तुम्हें समर्पित करना चाहते हैं। स्वतन्त्रता का एक नन्हाँ-सा पुजारी तुम्हें सौंपकर जा रहे हैं।

शीतला—ऐसा क्यों?

चन्दन—औरंगजेब ने वली बहादुर की अध्यक्षता में बुन्देलानरेश का पीछा करने के लिए एक सेना भेजी है।

शीतला—औरंगजेब? तुम्हारे कलेजे की आग अभी ठंडी नहीं हुई? तुम अपने उपकारी की गर्दन दबाना ख़ूब जानते हो। चन्दन, लाओ यह घोड़ा मुझे दो। स्वतन्त्रता की ज्वाला के उस अवशेष स्फुलिंग को अपनी झोली में छिपाने के लिए मुझे शीघ्र पहुँचना है।

(घोड़ा लेकर प्रस्थान। पीछे-पीछे, चन्दन का प्रस्थान)

पहला—देश के लिए मर मिटने का अभिमान राजपूतों को ही मिला है। आन इन्हीं की बपौती है।

दूसरा—संसार कितना स्वार्थी है। वही चम्पतराय—जिसके बल-बूते औरंगजेब सिंहासन पर बैठा है इस प्रकार मारा-मारा फिरे ?

पट-परिवर्तन

सातवाँ दृश्य

समय—सन्ध्या।

[जंगल में पर्णकुटी के सामने एक वृक्ष की छाया में खाट पर अस्वस्थ चम्पतराय। पास ही रानी सारन्धा।]

चम्पतराय—करवट लेकर) सारन्धा !

सारन्धा—स्वामी।

चम्पतराय—सूर्य अस्त हो रहा है ?

सारन्धा— ऊपर देखकर) हाँ नाथ।

चम्पतराय—कितना भला लगता है ! कितना लाल ! अस्त होने से पहिले........

सारन्धा—उधर मत देखो स्वामी। अस्तगामी सूर्य का दृश्य बहुत भयङ्कर होता है। बहुत डरावना।

चम्पतराय—(कठिनता से हँसकर) पगली।

सारन्धा—(माथे पर हाथ रखकर) बहुत गरम है। ज्वर की तेजी में बोलने से परिश्रम होता है।

चम्पतराय—मैं बहुत अच्छा अनुभव कर रहा हूँ सारन्धा।

सारन्धा—नहीं नाथ, माथे की तपिश, दिल की धड़कन, ये सब विश्राम के लिए आग्रह कर रही हैं।

चम्पतराय—आन और देश के मतवालों को विश्राम कहाँ ? विश्राम······विश्राम तो...···(चौंककर) ओह, देखो सारन्धा, मेरी तलवार कहाँ है ?

सारन्धा—सिरहाने पड़ी है।

चम्पतराय—मुझे पकड़ा दो। मैं उसे अलग नहीं करना चाहता। वह मेरी···वह मेरी जीवन-साथिन है।

(सारन्धा कटार देती है)

चम्पतराय—(कटार सम्हालकर) देखो चन्दन कहाँ है।

सारन्धा बची-खुची टुकड़ी ले जाकर शाही सेना से जूझ रहा है।

चम्पतराय—मुझे इस अवसर से न रोको सारन्धा। माँ की सेवा...

सारन्धा—आप नहीं जा सकते स्वामी।

चम्पतराय—सारन्धा, तुम्हें याद है तुमने एक दिन अपने भैया को युद्ध-स्थल में केवल मरने के लिए भेज दिया था।

सारन्धा—मैंने उसे पतन के गर्त से निकाला था स्वामी। आप अस्वस्थ हैं। आप नहीं लड़ सकते।

चम्पतराय—तलवार पकड़कर राजपूत किसी की परवाह नहीं करता।

(घोड़ों की टाप की आवाज़)

दूत—(प्रवेश करके) बुन्देला सरदार की जय हो। शाही सेना कुटिया की तरफ़ बढ़ी चली आ रही है। चन्दन ने उनका रास्ता बहुत देर तक रोके रक्खा, किन्तु वह······

चम्पतराय—शीघ्र कहो।

दूत—वह अपने-सरदार की रक्षा के लिए वीरगति को प्राप्त हुआ।

सारन्धा—चन्दन चल बसा ? (दूर से) जाओ दूत। (दूत का प्रस्थान)

चम्पतराय—सारन्धा, छत्रसाल कहाँ हैं ?

सारन्धा—शीतला के पास सुरक्षित है। स्वामी, आप यहाँ ठहर सकेंगे। मैं चन्दन की मृत्यु का बदला लेना चाहती हूँ।

चम्पतराय—बदला ले सकोगी सारन्धा ? सैकड़ों तलवारों के नीचे दो जानें किस तरह बच पायँगी।

सारन्धा—नहीं स्वामी, मुझे आज्ञा दो।

शाहूजी—महाराष्ट्र का सूर्य्य अस्ताचल को जा रहा है। क्षितिज से एक अन्धड़-सा उठ रहा है। महारात्रि का सामान जुट रहा है सेनापति! नियति बहुत भयङ्कर नाटक खेलनेवाली है।

चन्द्रसेन—यह आप क्या कह रहे हैं महाराज? राष्ट्र की रक्षा के लिये मरना हम भूल नहीं गये। हमें जूझना आता है राष्ट्रपति! इन छातियों में बरछों से भिड़ने की हिम्मत अभी है।

शाहूजी—तुम वीर हो चन्द्रसेन!

(बालाजी विश्वनाथ का प्रवेश)

बालाजी—(शाहूजी को अभिवादन करके) तुम वीर हो चन्द्रसेन!

चन्द्रसेन—मुझे पेशवा से इन प्रोत्साहन के शब्दों की जरूरत न थी। मैं जो कुछ हूँ, मैं वह जानता हूँ।

शाहूजी—सेनापति!

चन्द्रसेन—महाराज!

शाहूजी—यह मैं क्या सुन रहा हूँ?

चन्द्रसेन—मैं अपने शब्दों को दोहराने की जरूरत अनुभव नहीं करता।

शाहूजी—तुम्हें पेशवा के प्रति सभ्याचरण सीखना होगा। भूलो मत, तुम केवल एक सेनापति हो।

चन्द्रसेन—यही तो मैं कभी भूल नहीं सकता। यही तो एक टीस है। मैं केवल एक सेनापति हूँ और बालाजी पेशवा हैं।

शाहूजी—इस द्वेष के लिए राष्ट्र में कोई स्थान नहीं है।

चन्द्रसेन—(तलवार पर हाथ रख कर) अन्तिम नमस्कार। (प्रस्थान करने लगता है) मैं अपने लिए उपयुक्त स्थान ढूंढ़ निकालूंगा।

बालाजी—सेनापति एक बात सुनते जाओ।

चन्द्रसेन—मुझे अवकाश नहीं। बातें अब युद्धस्थल में होंगी। (जाता है)

बालाजी—यह अच्छा नहीं हुआ महाराज!

शाहूजी—सब अच्छा हो रहा है पेशवा! ऐसा ही हुआ करता है।

बालाजी—शिवाजी ने अपनी रक्त बूँदों से राष्ट्र की नींवों को दृढ़ किया था। कौन जानता था कभी ऐसा अनाचार भी होगा।

शाहूजी—बहुत भयानक विस्फोट होगा पेशवा। सन्ध्या अपने खून से ही सूर्य को बल देती है किन्तु वह कितनी देर टिक पाता है?

बालाजी—लेकिन अब क्या करना चाहिए?

शाहूजी—पेशवा!

बालाजी—महाराज!

शाहूजी—सेनापति की चिन्ता न करो। वह अपने ही मन की ज्वाला से जल रहा होगा। उसने तुम्हारा अपमान किया है। यह क्या उसे दग्ध करने के लिए काफ़ी नहीं?

बालाजी—महाराज! आप भूलते हैं। राष्ट्र के लिए यदि वह घातक न हो तो मुझे व्यक्तिगत अपमान की चिन्ता नहीं।

शाहूजी—तुम कितने उदार हो पेशवा!

बालाजी—इस समय सारे राष्ट्र में मुझे एक विद्रोही अत्यंत भयावना दीखता है। और वह है कान्होजी आँग्रे।

शाहूजी वह वीर है।

बालाजी—लेकिन क्रान्तिकारी है। राष्ट्र विरोधी है। आपकी सत्ता को मानने से इन्कार करता है। उसके हाथ से कोई जहाज़ नहीं बचता! वह डाकू है।

शाहूजी—वह सब कुछ है पेशवा! लेकिन समुद्र के युद्ध में विजय असम्भव है।

बालाजी—कुछ भी असम्भव नहीं महाराज! जिस दिन आंग्रे का सिर राष्ट्र की सेवा में झुक जायेगा उस दिन सब चिन्ताएँ दूर हो जाएँगी। हमारी फूट के कारण निज़ामुल्मुल्क भी शेर हुआ जा रहा है। मैंने रम्भाजी को उसका सेवक बनने के लिए भेजा है।

(एक गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर—(अभिवादन करके) महाराज! मान प्रदेश में कृष्णराव खटावकर ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी है। मनमानी

चौथ वसूल करके प्रजा को तंग किया जा रहा है। प्रजा पीड़ित है महाराज!

शाहूजी—तुम जाओ गुप्तचर! प्रजा को आश्वासन दिलाओ। सब ठीक हो जाएगा।

(गुप्तचर का प्रवेश) प्रस्थान

शाहूजी—पेशवा!

बालाजी—महाराज!

शाहूजी—इन काँटों को शीघ्र दूर करना होगा। अत्याचार को दबाने के लिए तुम स्वयं प्रस्थान करो। इन मेंढकों की जुबान पर टाँका लगाकर कह दो कि किसी भी ऋतु में तुम्हारा टर्राना सुहावना नहीं लगता।

बालाजी—जैसी आज्ञा। (जाने लगता है)

शाहूजी—और देखो, बहिरोपन्त पिंगले को आंग्रे के विरुद्ध विशेष सेना-खण्ड देकर भेज दो।

बालाजी—बहुत अच्छा महाराज! (प्रस्थान)

शाहूजी—आंग्रे मेरी सत्ता को नहीं मानता। खटाचकर स्वतन्त्र है। सेनापाति द्रूप का पुतला। देश के स्वास्थ्य को खानेवाले घिनौने कीड़े।

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

समय—गोधूली

[कोनकन तट पर सागर के किनारे एक चट्टान पर रवा। आयु—सोलह वर्ष। लाल अंगरखे में से गले की माला के तीन एक मनके निकल रहे हैं। एक हाथ में चित्रपटी और दूसरे में कूँची]

रत्ना—(गाती है)

तुम सिन्धु बड़े दीवाने।
जब नभ में सरल सुहानी,
आती है चन्दा रानी,
आतुर हो उछल उछलकर,
चल पड़ते उसे मनाने,
तुम सिन्धु बड़े दीवाने।
जब ऊषा तुम्हें सजाती,
नीलम पर लाल लगाती,
नव दुलहिन से मुस्काकर,
तुम लगते जरा लजाने,
तुम सिन्धु बड़े दीवाने।

(कान्होजी आंग्रे का प्रवेश। दोनों बाहें छाती पर लिपटी हुई हैं। केशों के हलके तार नन्हीं बयार से हिल रहे हैं।)

कान्होजी आंग्रे—क्या गाना गा रही थी रत्ना ?

रत्ना—नहीं तो।

का० जी आंग्रे—'तुम सिन्धु बड़े दीवाने'। हः ! हः ! हः ! दीवाने दीवानों की ही चर्चा करते हैं।

रत्ना—क्या मैं दीवानी हूँ ?

का० जी आंग्रे—नहीं तो। सिन्धु दीवाना है ?

रत्ना—मैंने कब कहा ?

का० जी आंग्रे—सिन्धु दीवाना नहीं है रत्ना ! देखो उसकी छाती पर मेरा जंगी बेड़ा। वह कितना कुछ सहन करता है।

रत्ना—यही तो दीवानगी है।

का० जी आंग्रे—यह सहनशीलता है। उदारता है।

रत्ना—देखो सरखेल ! अगर तुम्हारे इस समुद्र के टुकड़े पर कोई दूसरा अधिकार जमा ले ?

का० जी आंग्रे—(जोश में) मैं उसकी धज्जियाँ उड़ा दूँ।

रत्ना—तो तुममें सहनशीलता नहीं, उदारता नहीं।

का० जी आंग्रे—वह राष्ट्र का सवाल है रत्ना! ऐसा फिर कभी न कहना।

रत्ना—आंग्रे सरदार! तुम कोप के आगार हो।

का० जी आंग्रे - मुझे इसी पर तो नाज़ है। खैर, छोड़ो, ये शेरों की बात है। चिड़ियों को नहीं। (चित्र को देखते हुए) यह क्या बनाया जा रहा है?

रत्ना—सागर।

का० जी आंग्रे—और यह लाल लाल क्या है?

रत्ना - बादल।

का० जी आंग्रे—बादल भी कभी लाल हुए हैं?

रत्ना—क्रोध में।

का० जी आंग्रे—बादलों को क्रोध क्योंकर हुआ?

रत्ना—एक गुस्सैल सरदार को देखकर।

का० जी आंग्रे—उसे देखकर वे पानी-पानी हो जायेंगे।
(दोनों हँसते हैं) और ये महल क्या बनाये जा रही हो?

रत्ना—शाहूजी का।

का० जी आंग्रे—रत्ना!

रत्ना—फिर गुस्सा हो आया?

का० जी आंग्रे—शाहूजी का। औरंगजेब के टुकड़ों पर पला हुआ नीच। अधिकार का प्यासा गीदड़ शेर बनने चला है।

रत्ना—आंग्रे सरदार!

का० जी आंग्रे—चुप रहो रत्ना!

रत्ना—आपस की फूट अच्छी नहीं।

का० जी आंग्रे—दुनिया में सभी कुछ अच्छा नहीं होता।

रत्ना—मेल में बरकत है।

का० जी आंग्रे—बेजोड़ का मेल नहीं हुआ करता।

रत्ना—काँटे के मेल से फूल की रक्षा होती है।

का० जी आंग्रे—यह काँटे की बेवकूफ़ी है। फूल सुरक्षित रहने के लिये नहीं होता।

रत्ना—यह राष्ट्र का सवाल है आंग्रे सरदार!

का० जी आंग्रे—वह मैं ख़ूब समझता हूँ।

रत्ना—तुम समझने में ग़लती कर रहे हो।

का० जी आंग्रे—मुझे उपदेश मत दो रत्ना। छोड़ो यह चित्र (चित्र लेता है; रत्ना की चीख निकल जाती है।)

(एक दूत का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन करके) सरखेल ! महाराज शाहू ने बहिरोपन्त पिंगले को हमारे प्रदेश पर आक्रमण के लिए भेजा है। बहिरोपन्त की फ़ौज बढ़ी चली आ रही है।

का० जी आंग्रे—(कुछ सोचकर) दूत! तुलाजी को कहो वे अपनी खास टुकड़ी ले जाकर पिंगले का मुकाबला करें और उसे बन्दी बनाकर लावें।

दूत—जैसी आज्ञा। (जाना चाहता है)

का० जी आंग्रे—ठहरो दूत ! मैं स्वयं जाऊँगा। (रत्ना की ओर देखकर एकदम प्रस्थान)

रत्ना—पाँसा पलटनेवाला है। पृथ्वी के ज़र्रे २ से क्रान्ति की गन्ध आ रही है। शिवाजी का साम्राज्य टुकड़े २ हो चुका है। आंग्रे सरदार ! तुम्हारे मेल से उसका पुनर्जीवन हो सकता है। तुम उसे संगठित कर सकते हो।

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

समय—प्रातःकाल

(विजय दुर्ग के समीप मार्ग पर तीन नागरिक)

पहला—यह फूट राष्ट्र की लुटिया डुबो देगी।

दूसरा—महाराष्ट्र की शान तो शिवाजी के साथ ही चली गई। द्वेष और ईर्ष्या की सृष्टि हो चुकी है। विरोध का ज्वालामुखी सुलग रहा है। कौन जाने कब विस्फोट हो जाये।

तीसरा—सुना है सेनापति चन्द्रसेन निज़ाम के सेवक हो गये हैं।

पहला—हाँ, उसे जागीर के लालच ने देश-द्रोही बना दिया।

दूसरा—कहते हैं—'बालाजी' की पदवी उनके लिये असह्य थी।

तीसर—सेनापति का विदेशी शत्रु से मिल जाना राष्ट्र के पतन की पहली सीढ़ी है।

दूसरा—इधर कान्होंजी स्वतन्त्र बन बैठा है। जंजीरा के सिद्दी सरदारों से उसका निरन्तर युद्ध चल रहा है।

तीसरा—उसके प्रयत्न सराहनीय हैं!

पहला—किन्तु केवल विदेशियों के विरुद्ध हों तो न?

दूसरा—महाराज शाहू की सत्ता तो उसने नाक में रख दी है। बहिरोपन्त पिंगले कान्होजी को पराजित करने के लिए गये हैं।

पहला—और बालाजी खटावकर के छक्के छुड़ाकर सातारा लौट आये हैं।

दूसरा—बालाजी वीर है, राजनीति को समझता है।

तीसरा—शाहू महाराज को उसी का तो एक मात्र सहारा है। तारावाई के विरुद्ध यह राजनीतिज्ञ शाहूजी की सहायता न करता तो शायद महाराष्ट्र का राजसिंहासन तारावाई के षड्यन्त्रों से दूषित रहता।

पहला—यह खूब कही आपने। आजकल तो जाने बहुत पवित्र है।! ब्राह्मण के शिखा-सूत्र की वह इज्जत नहीं रही; गौ का वह मान नहीं रह गया।

(नेपथ्य में गान की ध्वनि)

तुम मिलकर निकलो हे जलकण !

तीसरा—रत्ना गा रही है।

पहला—कौन रत्ना ?

दूसरा—एक भिखारिन है।

तीसरा—अरे वही जो चित्र भी बनाती है।

पहला—चित्र ?

दूसरा—हाँ, जब देखो गुनगुनाती है, चित्र बनाती है और अगर उससे बात करो तो बस कान्होजी आंग्रे की चर्चा। कई लोग तो ऐसा कहने लग गये हैं कि यह कान्होजी की रखेल है।

तीसरा—राम ! राम ! राम ! जीभ सड़ जाये कहनेवालों की। निन्दा और स्तुती की तो कोई सीमा ही नहीं रही।

दूसरा—वह आ रही है।

(रत्ना का प्रवेश)

तीसरा—रत्ना ! गाओ।

रत्ना—(ऊपर देखकर) हैं !

गान.

तुम मिल कर निकलो हे जल-कण।
हैं कहीं शिलाएँ नोकीली,
जलती है धरती रेतीली,
इकले दुस्साहस मत करना,
हो जायेगा सर्वस्व हरण,
तुम मिलकर बरसो हे जलकण !

तुम किसी नदी पर थिरक चलो,
बाधा विघ्नों को दले चलो,
फिर जूझो आग बवण्डर से
पूजो स्वदेश के धवल चरण।

पहला—तुम बहुत अच्छा गाना गाती हो रत्ना !

रत्ना—देखो नागरिक ! बहुत भयङ्कर समाचार है।

दूसरा—क्या ?

रत्ना—बहिरोपन्त पिंगले कान्होजी की कारा में कैद बैठे हैं—बहुत भयङ्कर समाचार है। राष्ट्र खण्ड-खण्ड हुआ जा रहा है। संगठित हो जाओ। राष्ट्र को तुम्हारे पुंजीभूत बल की जरूरत है। शाहू महाराज की सहायता राष्ट्र को सहायता है।

दूसरा—उससे कान्होजी की हार होगी। राष्ट्र की समुद्र-शक्ति पर आघात होगा।

रत्ना—हार जाने से कान्होजी राष्ट्र की सम्पत्ति हो जायेंगे। मेल हो जायेगा भोले नागरिक।

(गाती हुई जाती है "पूजो स्वदेश के धवल चरण")

पहला—देश की कितनी धुन है ? यह राष्ट्र की सच्ची पुजारिन है।

दूसरा—बेशक। (प्रस्थान)

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

समय—प्रातः

(सातारा के राज-मन्दिर में दुर्गा की प्रतिमा के सामने अञ्जलि-बद्ध शाहू महाराज)

शाहू—हे महाराष्ट्र की अधिष्ठात्री देवी ! स्वराज्य को पुनर्जीवन प्रदान करो माँ ! तुम आज तक शत्रुओं से इस पुण्य भूमि की रक्षा

करती आई हो माँ ! आज तुम मूक क्यों बन गई हो ? हे प्रस्तर-प्रतिमा ! आज तुम्हारा हृदय क्या पत्थर का बन गया है ? राष्ट्र के जोड़ हिल रहे हैं। तुम उन्हें सम्बल प्रदान करोदेवी !

(उठता है)

(राज-पुरोहित का प्रवेश)

राज-पुरोहित—महाराज की आँखों में अश्रु-विन्दुओं का कारण पूछ सकता हूँ ?

शाहू—नहीं।

राज-पुरोहित—आपकी अधीरता राष्ट्र के हर व्यक्ति के मुंह पर छप जायेगी।

शाहू—मैं अधीर नहीं हूँ पुरोहित।

राज-पुरोहित—सुना है—बालाजी कृष्णराव को परास्त करके आ गये हैं।

शाहू—जानता हूँ। लेकिन पिंगले का कुछ समाचार सुना ?

राज-पुरोहित—अभी कुछ नहीं।

शाहू—बाहर शोर किस बात का है ?

राज-पुरोहित—तूफ़ान चल रहा है। वर्षा हो रही है।

शाहू—ओह ! मुझे कुछ देर यहाँ ठहरना होगा ! मैं कुछ ज़रा अकेले रहना चाहता हूँ।...... देखो पुरोहित ! चन्द्रसेन, आजकल कहाँ है ?

राज-पुरोहित—कितने दिनों से कुछ नहीं सुना। लोग कहते हैं—निज़ामुल्मुल्क से जा मिला है।

शाहू—निज़ामुल्मुल्क ?

राज-पुरोहित—हाँ महाराज !

शाहू—अच्छा, पुरोहित ! तुम जाओ।

(पुरोहित का अभिवादन के अनन्तर प्रस्थान)

शाहू—तुम्हारा द्वेष सहन किया जा सकता था जाधव ! यह देश-द्रोह असह्य है। इसका बहुत कड़ा दण्ड तुम्हें मिलेगा। (ठहरकर)

अभी तक पिंगले का कोई समाचार नहीं आया। (हवा का नाद) तूफ़ान चल रहा है।

(दरवाज़े पर एक दस्तक होती है)

(बालाजी का प्रवेश)

शाहू—आइये।

बालाजी—(नमस्कार करके) महाराज की खोज में निकल आया हूँ।

शाहू—कहो, क्या समाचार है। केश बिखरे हुए हैं।

बालाजी—अच्छा नहीं, तूफ़ान चल रहा है।

शाहू—शीघ्र कहो।

बालाजी—कान्होंजी ने बहिरोपन्त पिंगले को परास्त करके बन्दी बना लिया है।

शाहूजी—बन्दी?

बालाजी—हाँ महाराज।

शाहूजी—मेरा अनुमान अक्षरशः ठीक हुआ।

बालाजी—क्या?

शाहूजी—कि समुद्र पर विजय प्राप्त करना असम्भव है।

बालाजी—नहीं;

शाहू—नहीं? अब भी कुछ शेष है।

बालाजी—घबराइये नहीं महाराज! विजय केवल बल से ही नहीं प्राप्त होती।

शाहू—मतलब।

बालाजी—जिसे हम तलवारों और भालों से प्राप्त नहीं कर सकते उसे—

शाहू—उसे क्योंकर प्राप्त करोगे पेशवा?

बालाजी—उसे······अच्छा यह काम मुझे सौंपिये महाराज! मैं अकेला जाऊँगा। उसकी मित्रता राष्ट्र की उन्नति और दृढ़ता के लिये ज़रूरी है।

शाहूजी—लेकिन तुम अकेले क्योंकर जाओगे पेशवा ?

बालाजी—कोई चिन्ता नहीं महाराज ! मैं उसे आपका मित्र बनाकर लाऊँगा। अच्छा (नमस्कार करता है और जाता है)।

शाहूजी—माँ का सच्चा सिपाही। महाराष्ट्र के इतिहास में राजनीति के ज्ञाताओं में तुम्हारा नाम बहुत ऊँचा रहेगा पेशवा ! तुम राष्ट्र को चार चाँद लगाने जा रहे हो (प्रतिमा की ओर मुड़कर) माँ ! तू कितनी दयामयी है।

(नेपथ्य में गान)

आशा का दीप जलाये जा।
जब गहन तिमिर की माया हो,
जब तूफ़ानों की छाया हो,
तू दे दामन की ओट अरी,
अपना संसार रचाये जा।
आशा का दीप जलाये जा॥

पट-परिवर्तन

पाँचवाँ दृश्य

समय—झुटपुटा

(निज़ाम की राज-वाटिका में चन्द्रसेन जाधव)

चन्द्रसेन—शाहू महाराज ! तुम्हें मेरा अपमान बहुत महँगा पड़ेगा। मैं केवल एक सेनापति हूं। सेनापति बहुत कुछ कर सकता है। बालाजी के बल की ख़ुमारी में तुम मेरा अनादार कर सकते हो। मैं वहाँ भी एक दास था और यहाँ भी। राष्ट्रीयता एक ढोंग है। यहाँ मैं निज़ाम का दाहिना हाथ हूँ।

वज़ीर—जञ्जीरा पर पूरी रसद पहुँच चुकी है। लेकिन कान्होजी आंग्रे की फ़ौज के मुकाबले में बहुत मुश्किल पेश आ रही है।

निज़ाम—मरहठों के निफ़ाक से फ़ायदा उठाना चाहिए मलिक साहब ! मैंने चन्द्रसेन को आंग्रे के पास सुलह का पैग़ाम देकर भेजा है। सब कुछ ठीक कर लेने पर भी, जाने इन पर यक़ीन नहीं बैठता। फिर भी जिस दिन रम्भाजी पेशवा से रूठकर मेरे दरबार में आया था। मैंने उसी दिन समझ लिया था कि अब महाराष्ट्र के क़िले में दरार आ गई है।

(एक दूत का प्रवेश)

दूत—जहाँपनाह ! ग़जब हो गया।

निज़ाम—क्या ? जल्दी कहो।

दूत—इस्लाहखाने से शोले उभर रहे हैं। कहते हैं—रम्भाजी निम्बाल्कर ने उसके नीचे एक सुरंग बिछा रखी थी। आपको उस पर बहुत यकीन था। उसे बालाजी ने धोखे से आपके पास जागीरदारी के लिए भेजा था। अभी-अभी दो मराठे सरदारों के साथ रम्भाजी भाग गये हैं।

निज़ाम—हूँ ! मलिक साहब ! आप जाकर मौके का मुलाहज़ा कीजिये। मैं एक टुकड़ी लेजाकर रम्भाजी का पीछा करूँगा। इन मराठों के पेंच समझ में नहीं आते।

पट-परिवर्तन

छठाँ दृश्य

समय—सन्ध्या

(कोनकन तट पर एक जलयान में कान्होजी और रत्ना वार्तालाप के सूत्र में)

रत्ना—चन्द्रसेन क्यों आया था ?

कान्होजी—निज़ाम के साथ सन्धि का प्रस्ताव लेकर।

रत्ना—कैसी सन्धि ?

कान्होजी—निज़ाम के साथ मिलकर शाहूजी का नाश।

रत्ना—आपने क्या जवाब दिया ?

कान्होजी—मैं डाकू हो सकता हूँ, नीच नहीं।

रत्ना—उत्तर बहुत अच्छा नहीं दिया गया। तो आप निजाम के साथ मिल क्यों नहीं गये ?

कान्होजी—क्यों मिलता ?

रत्ना—क्योंकि ऐसा करने से शाहू महाराज का नाश हो सकता था। और राष्ट्र पतन के गर्त में जा सकता था। यही आपका ध्येय है न ?

कान्होजी—क्या बक रही हो रत्ना ? महाराष्ट्र के समुद्र की रक्षा करने के लिये मैं डाकू कहलाया। जान-जोखम में डाल कर सिद्दी सरदारों के पर काटे।

रत्ना—और राष्ट्राधीश की सत्ता को उपेक्षा की दृष्टि से देखा।

कान्होजी—किसी की अधीनता मुझसे नहीं हो पाती।

रत्ना—मातृ-भूमि की।

कान्होजी—वह तो कर ही रहा हूँ।

रत्ना—हः ! हः ! हः ! देखिए आंग्रे सरदार ! यह चन्द्रसेन...

(द्वार-पाल का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन करके) बालाजी आपसे मिलने आए हैं।

कान्होजी—बालाजी ? उन्हें लिवा लाओ। रत्ना ! तुम अब जाओ।

रत्ना—लेकिन राष्ट्र...

कान्होजी—राष्ट्र कहीं नहीं जाता। (रत्ना का प्रस्थान) राष्ट्र की दीवानी।

(बालाजी का प्रवेश)

बालाजी—आंग्रे सरदार !

कान्होजी—कहिये, आज पेशवा को यहाँ आने की जरूरत क्यों हुई ?

बालाजी—माँ ने भेजा है।

कान्होजी—माँ

बालाजी—हाँ, कहती है—'मेरा पुत्र मुझसे रूठकर चला गया है' उसके आंसू नहीं थमते कान्होजी !

कान्होजी—किन्तु एक ही सुपुत्र माँ का उद्धार कर सकता है पेशवा ! मुझसे माँ को क्या आशा है ?

बालाजी—आत्म-समर्पण।

कान्होजी—कहाँ ?

बालाजी—राष्ट्र की वेदी पर। शाहू महाराज के सिंहासन पर।

कान्होजी—वह क्योंकर होगा ?

बाला—आंग्रे सरदार ! तुम्हें स्मरण नहीं, अपने पूर्वजों की सेवाएँ ? तुमने भी तो शिवाजी के चरणों में बैठकर समुद्र शक्ति बनाई है। शाहजी भी शिवाजी का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। क्या तुम यह सहन कर सकोगे कि शिवाजी के रक्त से रँगी पुण्यस्थली पर विदेशी अपने ज़हरीले दाँत गड़ाएँ।

कान्होजी—कभी नहीं, यह नहीं हो सकता।

बालाजी—यह होनेवाला है। यह होगा। इसे तुम रोक सकते हो।

कान्होजी—मैं अपनी जान देकर भी उसे रोकूँगा। लेकिन मुझे परतन्त्र होना नहीं आता।

बालाजी—तुम पेशवा का पद सँभालोगे ? मैं सिर्फ देश का एक सिपाही बन जाऊँगा।

कान्होजी—बालाजी ! यह उदारता ? मैं ग़लती पर था। अधिकार तुच्छ है मातृ-सेवा सर्वश्रेष्ठ। पेशवा ! मैं आपका सेवक हूँ।

बालाजी—(सन्धि-पत्र निकालकर) नहीं, यह देखो, पिंगले को छोड़ दो कोनकन तट के साथ-साथ सूरत से पन्हाला तक का प्रदेश

तुम्हारी जागीर है। तुम उसकी रक्षा करो। चौथ वसूल करके उचित भाग राज्य को दो।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन करके) सातारा से एक दूत पेशवा को मिलने आए हैं।

कान्होजी—लिवा लाओ।

बालाजी—सातारा से दूत ? कुशल-समाचार होना चाहिए।

(दूत का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन करके) पेशवाजी ! आपके लिए एक विशेष समाचार है।

बालाजी—कहो। हम सब एक हैं, कह दो।

दूत—रम्भाजी ने निज़ाम का इस्लाहख़ाना उड़ा दिया है। निज़ामुल्मुल्क स्वयं उसका पीछा कर रहे हैं। सातारा पर आक्रमण होनेवाला है।

बालाजी—रम्भाजी कहाँ है ?

दूत—सातारा में फ़ौज की कमान सँभाले खड़े हैं।

बालाजी—कोई चिन्ता नहीं। तुम जाओ।

(दूत का प्रस्थान)

कान्होजी—मैं कुछ कर सकता हूँ ?

बालाजी—हाँ, करना होगा। आंग्रे सरदार ! तुम पिंगले को साथ लेकर अहमदनगर पर चढ़ाई कर दो। निज़ामुल्मुल्क के घर पर उसकी शक्ति का नाश होना चाहिए।

कान्होजी—जैसी आज्ञा ;

बालाजी—अच्छा मैं चलूँ। (प्रस्थान)

कान्होजी—द्वारपाल !

द्वारपाल—महाराज !

कान्होजी—तुलाजी से कहो, मेरा घोड़ा तैयार करे और सेना भी।

द्वारपाल—जैसी आज्ञा (प्रस्थान)

कान्होजी—(वस्त्र ठीक करते हुए) आज राष्ट्र के ढीले पुरजों में वह चुस्ती आएगी······

(रत्ना का प्रवेश)

रत्ना—कहाँ जा रहे हो?

कान्होजी—अहमदनगर पर चढ़ाई···(जाता है)

रत्ना—आज मन की साध पूरी हुई। कितना अच्छा हुआ ग· ाती है)

मन फूला नहीं समाता।
रवि-किरणें चोरी चोरी,
बरसातीं मधु की डोरी,
भर जाती कुसुम-कटोरी,
भँवरों का मन ललचाता।
मन फूला नहीं समाता॥
पानी में पेंगें डाले,
पकड़े कमलों ने प्याले,
ऊपर वे बादल काले,
नीचे सागर लहराता।
मन फूला नहीं समाता॥

सातवाँ दृश्य

समय—प्रातःकाल

(पूना के समीप राजमार्ग पर तीन नागरिक)

पहला—मुझे रात एक बहुत ही अद्भुत सपना आया।

दूसरा—क्या ?

पहला—मैंने देखा—आकाश पर बादलों की काली भयानक टुकड़ियाँ हैं। अमावस्या की रात है। दो सितारे परस्पर विपरीत दिशा में चले जा रहे हैं। एकाएक काले बादलों ने दोनों को ढाँप लिया। फिर वे दोनों सितारे मानो किसी चुम्बक द्वारा आपस में मिल गए। एक कड़क-सी हुई। बादल फट गये।

तीसरा—बहुत अच्छा सपना है। मैं कहता हूँ—बहुत अच्छा सपना है।

दूसरा—राष्ट्र का सितारा बहुत ऊँचा है।

पहला—सुना है—कान्होजी आंग्रे शाहू महाराज के अधीन हो गये हैं।

दूसरा—अधीन नहीं, उनके मित्र बन गये हैं।

तीसरा—बहुत सुन्दर समाचार है। मैं कहता हूँ—बहुत सुन्दर समाचार है।

दूसरा—निजाम के इस्लाहखाने का भी ख़ातमा ख़ूब हुआ।

पहला—रम्भाजी ने तो ख़ूब हाथ दिखाये।

दूसरा—यह सब बालाजी के मस्तिष्क की सूझ है।

पहला—रम्भाजी अब महाराष्ट्र के सेनापति हैं!

तीसरा—हाँ, सुना है—निजामुल्मुल्क ने सातारा पर आक्रमण किया है।

दूसरा—रम्भाजी की एक ही टुकड़ी ने उनके दाँत खट्टे कर दिये।

पहला—और कान्होजी ने अहमदनगर में ख़ूब लूट मचाई।

तीसरा—अरे निजाम ख़ूब ठगा गया। ये लोग बहुत मोटी बुद्धि के होते हैं।

दूसरा—दक्षिण का वह सारा प्रदेश जिस पर यवनों की हुकूमत थी फिर से मरहट्टों के क़ब्ज़े में आ गया है।

पहला—यही देखो पूना का प्रदेश, वह देवी का मन्दिर। कितने दिनों के बाद इस पर राष्ट्र का भगवा झण्डा फहरा रहा है।

दूसरा—यह तो सृष्टि का क्रम है। मानव की विकट भूख का उदाहरण है। किसी के समाधि खण्डहरों पर अपनी बस्ती बसाने का अभ्यास मानव को बहुत देर का है। वह अपनी निजी सम्पत्ति से सन्तुष्ट हो जानेवाला जीव है ही नहीं।

पहला—चन्द्रसेन आजकल कहाँ हैं?

दूसरा—राम्भाजी का षड्यन्त्र देखकर निज़ाम को चन्द्रसेन पर शङ्का हो गयी। चन्द्रसेन, सुना है, आंग्रे की शरण में आ गये हैं।

(नेपथ्य से गान "आज कञ्चन सा उजाला")

पहला—रत्ना गा रही है।

दूसरा—हाँ।

(रत्ना गाते-गाते आती है। पीछे हटकर तीनों नागरिक सुनते हैं)

(गान)

आज कञ्चन सा उजाला।
लाल चन्दा सूर तारे,
लाल मन्दिर के कगारे,
लाल ऊषा-रश्मि-रज्जू
ने किसी के पग पखारे,
आज धरणी के गले में सोहती है लाल माला।
आज कञ्चन सा उजाला॥
लाल झरने, नीड़ पानी,
लाल कुसुमों की कहानी,
लाल निखरी सी मँजी सी,
झिलमिलाती जिन्दगानी,
आज वसुधा के कणों में चमचमाती दीपमाला।
आज कञ्चन सा उजाला॥

(गाना समाप्त होने पर)

दूसरा—रत्ना! कहो, आजकल क्या समाचार है?

रत्ना—समाचार ! अब कोई समाचार नहीं होगा।

पहला—यह चित्र दिखाओगी रत्ना ?

रत्ना—हाँ, हाँ, देखो।

दूसरा—(चित्र देखकर) यह पर्वत पर दीपक कैसा है ?

रत्ना—राष्ट्र की अमर ज्योति।

तीसरा—और यह पास ही एक बुझा हुआ दीपक ?

रत्ना—उसकी अपनी सत्ता राष्ट्र की ज्योति में मिल गई है। वह बुझा नहीं अमर हो गया है।

पहला—और वह दूसरा चित्र ?

रत्ना—वह न देखो।

दूसरा—क्यों ?

रत्ना—ऐसे खड़े-खड़े नहीं, वह पूजा के योग्य है।

तीसरा—एक झलक दिखा दो।

रत्ना—नमस्कार करो। (बालाजी का चित्र दिखाती है)

सब—बालाजी विश्वनाथ ? नमस्कार।

रत्ना—यह राष्ट्र की अमर विभूति है। राजनीति का रत्न है। महाराष्ट्र की डूबती हुई नैया को इसने पार लगाया है।

दूसरा—तुम ठीक कह रही हो रत्ना ! चन्द्रसेन आजकल कहाँ हैं ?

रत्ना—राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र के पास है। इस समय मराठा शक्ति एकत्रित है। सब के पास अपनी-अपनी जागीर है। उसकी रक्षा करना हर सरदार का कर्तव्य है। यह बालाजी की सूझ है। आज उत्कर्ष की सीमा का यह दूसरा दौर बालाजी ने आरम्भ किया है। कल को सातारा में महाराज शिवाजी की वर्षगांठ मनाई जायगी।

(गाती जाती है)

आज कञ्चन सा उजाला,

(सब पीछे जाते हैं)

पट-परिवर्तन

आठवाँ दृश्य

समय—प्रातः

[सातारा का राज्य-भवन। सिंहासनारूढ़ शाहू महाराज तथा अपने-अपने स्थानों पर बैठे हुए मराठे सरदार। शिवाजी का चित्र टँगा है। चित्र की आराधना में देवदासी गा रही।]

जय महान जय राष्ट्र प्राण।
जय महाराष्ट्र के अमर दान॥
तेरे इंगित पर हिले धरा,
तेरी भृकुटी से काल डरा,
बस पीछे पीछे नियति चली,
तू जिधर उठाकर आँख चला,
हे तेज-पुञ्ज हे कान्तिमान्।
हे महाराष्ट्र के अमर दान॥
तुम उठो वीर लेकर कृपाण,
हो एक हाथ में शर कमान,
हिल उठे धरा आकाश जरा,
तुम छेड़ो ऐसी प्रलय तान,
फहरावें वे भगवे निशान।
हे महाराष्ट्र के अमर दान॥

बालाजी—मराठा सरदारो! आज उस युग-पुरुष की वर्ष-गाँठ मनाई जा रही है जिसका इतिहास राष्ट्र का इतिहास है। यद्यपि उसका स्थूल शरीर हममें नहीं है तो भी उसकी स्मृति-मात्र हममें नवजीवन का संचार कर देती है। राष्ट्र के इतिहास में यह दूसरा सुनहला अवसर है जब मराठा शक्ति अपने उत्कर्ष पर पहुँची हो। यद्यपि शिवाजी महान जागीर प्रथा के विरुद्ध थे तो भी मैं यह समझता हूँ कि इस

समय यही एक-मात्र उपाय है। आज इस उन्नत अवस्था में हमारा यह दिन मनाना उपयुक्त है। आओ, सब वीर मराठे अपनी-अपनी तलवारों पर हाथ रखकर उस महा-पुरुष के सामने घुटने टेककर प्रण करें कि हम मातृ-भूमि के लिये अपना सर्वस्व तक लुटाते रहेंगे।

(सब उठते हैं। जय जय नाद होता है। देवदासी गाती है)

"जय महान जय राष्ट्र प्राण"

(यवनिका)

राष्ट्रधर्म

हिन्दू-भारत के एक वेजो शासक की कहानी

अभिनय-काल ४५ मिनट

पात्र-परिचय

हर्षवर्धन	मगध-सम्राट्
राज्यवर्धन	युवराज (हर्षवर्धन के अग्रज)
भण्डि	सेनापति
अर्जुन	मन्त्री
देवगुप्त	मालवेन्द्र
हुएन्त्सांग	महाश्रमण (चीनी यात्री)
दिवाकर मित्र	एक भिक्षु
राज्यश्री	हर्षवर्धन की बहिन—कन्नौज की रानी
अलका, सुनन्दा	राज्यश्री की सखियाँ
उद्धव भील	एक भील
बाण	एक कवि
मातंग	एक चित्रकार

पहला दृश्य

समय—गोधूली

(थानेश्वर के मन्त्रणागार में युवराज राज्य-वर्धन और भण्डि। युवराज की आँखों में एक पछतावे की छाया और मस्तक पर चिन्ता की रेखा झलक रही है छल्लेदार केश कानों तक छूट रहे हैं।)

राज्यवर्धन—यह जीवन कितना क्षणभंगुर है सेनापति !

भण्डि—हाँ युवराज, इसकी क्षण भंगुरता ही तो एक समस्या है।

राज्यवर्धन—यह जानते हुए भी मानव इसे व्यर्थ में खो देता है। जिस बालू की नींव पर वह सपनों के झूठे महल खड़े करता है वह खिसक जानेवाली है—यह वह सोचता ही नहीं। (ठण्डी साँस लेकर) ठीक है सेनापति, यह एक समस्या है और इसका सुलझाव मानव के वस का नहीं।

भण्डि—क्यों नहीं युवराज ?

राज्यवर्धन—(चौंककर) कैसे ?

भण्डि—जीवन से युद्ध।

राज्यवर्धन—फिर युद्ध। तुम्हारी युद्ध-लिप्सा अभी शान्त नहीं हुई भण्डि ? तुम्हारी इस प्रेरणा से सब भस्म हुआ जा रहा है। याद हैं तुम्हें वे चीत्कार जो हूणों की विधवा नारियों के कण्ठ से निकल कर मेरी तलवार के गिरद चिपट गये थे ? और वह आँसुओं की प्रलयङ्कर बाढ़ ! मैं तो जाने उसमें डूबा जा रहा हूँ। और तुम-तुम उस समय उस ख़ूनी घाटी पर लाशों का ढेर देखकर खिलखिला रहे थे। मानव को यह ख़ून का चस्का कहाँ से लग गया ?

भण्डि—यही जीवन का तथ्य है युवराज ! यही सृष्टि का क्रम है। निष्क्रिय जीवन थोथा होता है। यही राज्य धर्म है।

राज्यवर्धन—छिः ! छिः ! सेनापति ! तुम इसे राज्य-धर्म कहते हो ? सभी मानव बराबर हैं। सबको एक जैसा रहने का अधिकार है। वसुन्धरा के एक लघुखण्ड के लिए हम खून के दरिया बहा दें ? मातृभूमि के दम्भ की आड़ में हम अपनी इच्छा-पूर्त्ति करें ? देश के नाते यह हिंसा का व्रत मुझे नहीं भाता। भगवान् तथागत का वह सरल शाश्वत जीवन, उनका वह उपदेश तुम्हारी युद्ध की पुकार से बहुत जोरदार है।

भण्डि—राज्य के प्रति तुम्हारी यह उदासीनता देश के लिए भयंकर सिद्ध हो सकती है। तुम अपने कर्तव्य पथ से गिर रहे हो युवराज !

राज्यवर्धन—देश ? कौन-सा देश ? मैं तो पृथ्वी के एक-एक कण में इस हृदय का स्पन्दन सुन रहा हूँ। अपने पराये का अन्तर इस आँख में है ही नहीं।

भण्डि—किन्तु हूण हमारे शत्रु हैं।

राज्यवर्धन—नहीं। वे हमारे भाई हैं सेनापति ! थानेश्वर की गोद उनके लिये भी उतनी ही उत्सुक है जितनी हमारे लिए।

भण्डि—राज्य-दण्ड का तकाजा है कि देश-रक्षा के लिए आपकी तलवार उठे।

राज्य-वर्धन—तलवार ? फिर वही तलवार ? तुम मुझे इस तलवार से छुट्टी दो भाई ! यह कूट शस्त्र मुझसे सँभलने का नहीं। मैं किसी पर शासन करना नहीं चाहता। मैं तो किसी का हो जाना चाहता हूँ।

(सहसा हर्षवर्धन का प्रवेश)

हर्षवर्धन—युवराज इतने अधीर हैं—क्या मैं इसका कारण पूछ सकता हूँ ?

भण्डि—थानेश्वर के चारों ओर आसमान लाल हो रहा है। हर तरफ विपत्ति के बादल घुमड़ रहे हैं। एक विकट चित्र का साज सज

रहा है। युवराज की उदासीनता इस अन्धकार को और भी बीहड़ बना रही है।

हर्षवर्धन—यह सब क्या है भैया ? उत्तरापथ की टकटकी तुम्हारी ओर लगी है। थानेश्वर को पादाक्रान्त होते देखकर भी तुम्हारे हाथ नहीं हिलते ? राज्य-शक्ति को सभालनेवाली इन उँगलियों में आज ाह कम्पन कैसा ?

राज्यवर्धन—देखो कुमार ! इन हाथों में अब भी इतना बल है के ये सृष्टि में एक उथल-पुथल मचा दें। किन्तु मेरी सारी स्फूर्ति ाो उन निरीह लाशों के पास सिमटी रह गई है, जिनको अकारण ही मैंने मौत के घाट उतार दिया। वह दृश्य मेरी आँखों के सामने नाचता रहता है। इस दिल में पैठकर देखो कुमार ! एक ज्वार-सा उफन कर बैठ गया है।

हर्षवर्धन—एक भीषण भक्खड़ चल रहा है भाई, पिता के रक्त से रँगी हुई इस राज्यपताका को सम्बल प्रदान करो।

राज्यवर्धन—बड़े भाई की एक नन्हीं सी साधना के लिए थोड़ा-सा बलिदान करो भैया। यह शासन तुम्हीं सँभालो। पूज्य पिताजी की भी यही कामना थी।

हर्षवर्धन—यह क्योंकर होगा भाई ? शासन की जिम्मेदारियों से अलग होकर तुम चैन से न बैठ सकोगे। तुम्हारी बहनों पर हुए अत्याचार करेंगे और तुम उस समय अहिंसा का पाठ पढ़ोगे ? तुम्हें युद्ध करना होगा।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—महाराज की जय हो। कन्नौज से एक दूत आया है।

राज्यवर्धन—उसे लिवा लाओ।

(द्वारपाल का प्रस्थान)

हर्षवर्धन—थानेश्वर के डगमगाते सिंहासन को देखकर गौड़ाधीश और मालवेन्द्र के मुँह में भी पानी आ गया है। उन्हीं की उकसाई आग···

(दूत का प्रवेश तथा अभिवादन)

राज्यवर्धन—कहो दूत क्या समाचार है।

दूत—मालवेन्द्र देवगुप्त ने कन्नौजपति ग्रहवर्म्मा पर चढ़ाई कर दी और……और……।

राज्यवर्धन—कहो दूत। कहते जाओ। यह हृदय सब कुछ सुनने के लिए तैयार है।

दूत—ग्रहवर्म्मा मारे गये और राज्यश्री देवगुप्त के बन्दीगृह में दिन बिता रही है।

(क्षणभर के लिए सन्नाटा। सब स्तम्भित रह जाते हैं)

राज्यवर्धन—कुछ और कहना शेष है दूत ?

दूत—बौद्धधर्म को निर्मूल करने की भावना से प्रेरित होकर मालवेन्द्र ने यह सब किया।

राज्यवर्धन—तुम अब जा सकते हो दूत।

(दूत का प्रस्थान)

हर्षवर्धन—बहिन बन्दिनी है भैया।

राज्यवर्धन—हाँ। (सिर हिलाता है)

हर्षवर्धन—उसका सिंदूर भी उतर गया है।

राज्यवर्धन—हाँ (निःश्वास भरकर) उसका सिंदूर भी उतर गया है।

भण्डि—शक्ति-शाली राष्ट्र के प्रतिनिधियों की बहन आज कारागार में है।

राज्यवर्धन—वह कारागार में नहीं रहेगी सेनापति। वह आज तक कारागार में नहीं रही।

हर्षवर्धन—बौद्धधर्म को निर्मूल करने के लिए यह दुःखान्त नाटक हुआ है भाई।

राज्यवर्धन—तलवार से धर्म के फैसले नहीं हुआ करते भाई। जो चीज ही शाश्वत है उसका निर्मूलन कैसा ? किन्तु बहिन की दशा (सोचने का नाट्य करता है)।

भण्डि—युवराज ! अभी कुछ सोचना शेष है ?

राज्यवर्धन—क्या मुझे फिर से तलवार उठानी पड़ेगी सेनापति ? मेरे रक्त में एक ज्वर सा धधक रहा है। क्या मैं प्रतिहिंसा के लिये···

हर्षवर्धन—हाँ भैया ! प्रतिहिंसा। प्रतिशोध। यही तो जीवन को चलाते हैं। नहीं तो सृष्टि का अणु-अणु ठहरकर निर्जीव हो जाय। बहन की कोमल कलाइयों में पड़ी लौह-शृङ्खला के ध्यान मात्र से मेरा रक्त खौल उठता है।

राज्यवर्धन—(उत्तेजित होकर) बस बस भाई। और न सुलगाओ इस कलेजे को। (सेनापति की ओर देखकर) सेनापति ! सेना तैयार करो। शत्रु को अत्याचार का फल मिलना चाहिए।

हर्षवर्धन—भैया।

भण्डि—आपसे ऐसे ही आचरण की आशा थी।

राज्यवर्धन—देखो भाई ! देश की रक्षा का भार तुम्हारे ऊपर है।

हर्षवर्धन—जैसी आज्ञा ! ईश्वर करे आप विजयी हों।

(प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

समय—रात्रि

(कान्यकुब्ज दुर्ग की कारा में राज्यश्री सीखचों के साथ सटकर खड़ी है। उनींदी आँखें उबल रही हैं। धानी साड़ी का छोर सिर से खिसक गया है। अलका और सुनन्दा चिन्तित अवस्था में पास ही खड़ी हैं।)

सुनन्दा—महारानी, क्या देख रही हैं ?

राज्यश्री—दीपमाला।

सुनन्दा—कैसी दीपमाला ? आप इतनी खोई-खोई क्यों रहती हैं ? ये अधीर बातें। यह उदासीनता। आखिर जीवन की यह बीहड़ यात्रा क्योंकर कटेगी ?

राज्यश्री—दीपमाला देख रही हूँ सुनन्दा। कन्नौज के खंडहर आज अपना सारा स्नेह फूंककर भभक उठे हैं। वह देखो टिमटिमाते हुए दीपक। आज उत्सव मनाया जा रहा है।

सुनन्दा—(समीप जाकर) उत्सव ?

राज्यश्री—हाँ ! उत्सव। मालवेन्द्र ने कन्नौज को जीता है न। वहाँ की रानी को वन्दी बनाया है। वह इस पर उचित गर्व कर सकता है।

सुनन्दा—इस उत्सव पर एक प्रलय की छाया नाच रही है महारानी !

राज्यश्री—मेरा मन न वहलाओ सुनन्दा !

सुनन्दा—आशा की डोरी वड़ी सुहावनी होती है महारानी ! ईश्वर पर भरोसा रखो।

राज्यश्री—ईश्वर ? (निराशा-पूर्ण हँसी से) उसी पर तो भरोसा रखती आई हूँ। आज वही तो एक काँटा है जो मेरे जख्मों में चुभ रहा है। मैं तो उसका पश्चात्ताप कर रही हूँ। व्यर्थ ही मैंने उस पत्थर के ढेले पर अपनी आस्था का अर्घ्य चढ़ाया। ईश्वर ! हुँ।

सुनन्दा—धर्म ही व्यक्ति को उठाता है महारानी। दुःख में उसे भूल जाना मूर्खता है।

राज्यश्री—इसी धर्म के दम्भ ने कन्नौज का चप्पा-चप्पा श्मशान वर्ना दिया है। वह धर्म तो स्वयं गिरा पड़ा है सखि !

दूत—(प्रवेश करके) महारानी की जय हो।

राज्यश्री—(चकित होकर) भिक्षु ? तुम यहाँ ?

दूत— मुँह पर अँगुली रखकर चुप रहने का नाट्य करके) यह पत्र है (पत्र देकर प्रस्थान)

(राज्यश्री पत्र पढ़कर सोचती है)

अलका—महात्मा मित्रसेन कैसे हैं? विहार से क्या समाचार आया है?

राज्यश्री—महात्मा का नाम न लो सखि। देखती नहीं देवगुप्त के गुप्तचर प्रतिक्षण इसी खोज में रहते हैं—"विहार मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। हिंसा से अहिंसा का युद्ध होगा। मानव मात्र को यह पाठ पढ़ाना होगा। भगवान् तथागत की पुकार हर कोने में पहुँचानी होगी।"—कितने भोले और पवित्र भाव हैं! किन्तु मैं युद्ध न करूँगी सुनन्दा। मेरा जीवन शून्य है। कोई साध ही नहीं रह गई। मेरी कामना तो इन सीखचों से टकराकर लाचार पड़ी है। नहीं तो जब कन्नौज-पति की चिता दहकी था तो......तो अलका! जानती हो क्या होना चाहिए था?

अलका—क्या महारानी?

राज्यश्री—उसी पर एक ओर तुम्हारी महारानी को भी स्थान मिलना चाहिये था।

नेपथ्य से गान

आशा जीवन तेरा पंखी आशा जीवन तेरा॥
सिर पर हों घनघोर घटाएँ।
तूफ़ानी बौछारें आयें।
नीड़ हिलें शिशुजन घबड़ायें।
तू पंखों में साहस भर ले जब तक जीवन तेरा॥
पंखी आशा जीवन तेरा।

अलका—सुना महारानी?

राज्यश्री—हाँ! नर्तकी गा रही है। विजयोत्सव है।

सुनन्दा—आशा और जीवन का कितना गहरा संबन्ध है!

राज्यश्री—दिलबहलावे के ये सपने मीठे ज़रूर होते हैं। सच्चे नहीं।

(दूत का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन करके) मुझे आज्ञा है महारानी ?

राज्यश्री—आज्ञा एक बन्दी से नहीं ली जाती दूत ! उसके लिए मालवेश हैं।

दूत—देवगुप्त आपसे मिला चाहते हैं।

राज्यश्री – मालवेन्द्र को भी कारा में आने के लिए आज्ञा की जरूरत होगी ? जिसके हाथों ने कान्यकुब्ज की सधवाओं का ईंगुर अपनी एक नन्हीं-सी सनक के लिये मिटा दिया उसे आज सूचना देने की क्या जरूरत पड़ गई ? दूत ! अपने महाराज से कह दो - जिसे तुम अबला समझकर ये व्यंग कस रहे हो वह चोट खाई नागिन है। उसके सम्मुख आने के लिए सूचना की आवश्यकता नहीं साहस चाहिए।

(दूत का प्रस्थान)

देवगुप्त—(प्रवेश करके) महारानी ने कुछ सोचा ?

राज्यश्री—(व्यंगात्मक ध्वनि से) सोचना मेरे लिए कोई नई बात है क्या ? मैं तो सोचती ही रहती हूँ मालवेन्द्र।

देवगुप्त—क्या ?

राज्यश्री – यही कि बुझने से पहले दीपक की लौ भभकती है। इसी तरह मलवराज अपने नाश से पहले······

देवगुप्त—(क्रोध में) राज्यश्री ! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि तुम एक बन्दी हो। मालवराज से बात करने का शिष्टाचार तुम्हें सीखना चाहिये।

राज्यश्री—यही तो मैं सोच नहीं पाती कि मैं मालवराज से बातें कर रही हूँ। इसी लिए उपयुक्त शिष्टाचार से युक्त शब्दों का प्रयोग नहीं हो पाता। नहीं तो वर्धनों में शिष्टाचार की कमी नहीं।

देवगुप्त—(व्यंग से) वर्धनों से यह तो हो न पाया कि बहन को कारा से छुड़ा ले जायँ।

राज्यश्री—भीरु और निर्बल शत्रु के लिए भैया को आने की जरूरत नहीं। और फिर यही दो लोहे की सुलाखें न? तुम इसे कारा कहते हो और कहते हो कि मैं इसमें वन्दी हूँ (ऊपर देखकर) वह देखो—तुम्हारे सिर पर मँडराते हुए मेघों में बिजली के ख़ूनी डोरों के साथ-साथ मैं फिर रही हूँ।

देवगुप्त—राज्यश्री! मालवेश तुम से पुरुष के प्रति उचित शिष्टाचार की आशा रखता है।

राज्यश्री—वास्तव में जब से मुझे इस दुर्ग में रहना पड़ रहा है मुझे किसी पुरुष से बात करने का अवसर ही नहीं मिला। नहीं तो मैं सच कहती हूँ मैं पुरुषों से बहुत अच्छा बोलती हूँ। मैं यदि भय खाती हूँ तो हिंस्र जन्तुओं से। उन पर मुझे दया भी आती है। असल में वे मेरी बात समझ नहीं पाते।

देवगुप्त—तुम्हारे मुँह को ताला लग जाना चाहिए राज्यश्री। तुम एक शत्रु की कैद में हो। तुम्हारा जीवन और मरण मेरी मुट्ठी में बन्द हैं। कल मध्याह्न तक मित्रसेन के विहार का पता देना होगा। मेरा हिन्दु-धर्म का स्वप्न बौद्ध विहारों के समाधि-मन्दिर में सजेगा।

(क्रोध में प्रस्थान)

राज्यश्री—अलका!

अलका—महारानी।

राज्यश्री—देखा धर्म का पागलपन और उसकी आड़ में छिपा हुआ स्वार्थ का साँप? इसी धर्म की दीक्षा में मेरा सुहाग छिन गया था अलका। और अब तो जाने जीवन में मुझे एकदम रुकना पड़ रहा हो। मेरे अंतर से एक ऐसी प्रेरणा मेरी नस-नस में दौड़ रही है।

सुनन्दा—महारानी, इस कारा से छुटकारे का एक उपाय मैंने सोचा है।

राज्यश्री—छुटकारे का उपाय? (सोचने की मुद्रा में) वह क्या?

सुनन्दा—दुर्ग का गुप्तद्वार।

राज्यश्री—(चुप कराने का नाट्य करती हुई) छुटकारा !! खूब सोचा। सुनन्दा !

सुनन्दा—महारानी।

राज्यश्री—रात बहुत बीत चुकी है। अब सो जाओ।

अलका—आप भी कुछ सुस्ता लीजिए।

राज्यश्री—मेरी चिन्ता न करो सखि। बन्द होनेवाली आँखें तो कब की बन्द हो गईं। ये तो उबलते हुए पानी के दो चश्मे हैं। इनमें नींद कहाँ ?

(सखियों का प्रस्थान)

राज्यश्री—छुटकारा···गुप्तद्वार···(सोचती है)

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

समय—झुटपुटा

(विन्ध्याटवी के कानन-पथ में राज्यश्री और अलका। अलका कुछ व्यग्र-सी, डरी-सी, सहमी-सी। राज्यश्री कुछ निराश-सी। स्मृतियों का संसार समेटे।)

राज्यश्री—कितना बीहड़ वन है अलका !

अलका—हाँ महारानी, सन्तरियों की तरह खड़ी यह वृक्षावलि, मेघमाला का आलिंगन करती हुई ये विन्ध्याचल की चोटियाँ—मानो हमारा पथ रुद्ध करके कह रही हों "यह हिंस्र जन्तुओं से भरी स्थली में तुम कौन ?" मुझे तो भय लगता है महारानी।

राज्यश्री—अब भय खाना छोड़ दो अलका ! भय उसे लगता है जो शरीर से मोह रखता है। इस नश्वर देह से किसी हिंस्र जन्तु का पेट ही भर जाय तो ऐसे जीवन से छुटकारा तो मिले।

अलका—निराश न होना चाहिए महारानी।

राज्यश्री—अब आशा ही कौन सी रह गई है सखि ! तीन दिन से पानी का घूँट अन्दर नहीं गया। आखिर यह अस्थि-कङ्काल कब तक हिलता रह सकेगा ?

(बिल्कुल समीप एक तीर जोर से गिरता है।
दोनों देखने लगती हैं)

राज्यश्री—(तीर की ओर देखकर) अभागा निशाने से चूक गया।

अलका—महारानी बाल-बाल बच गईं।

राज्यश्री—यही तो हसरत रह गई। थोड़ा टेढ़ा हुआ होता-तो कन्नौज की क़िस्मत का फ़ैसला अभी हो जाता।

अलका—आपको मृत्यु से डर नहीं लगता महारानी ?

राज्यश्री—मृत्यु ? जिसके पास बचपन से मृत्यु खेलती रही हो उसे मृत्यु से डर लगेगा सखि ?

(कमान पकड़े उद्धव भील का प्रवेश)

राज्यश्री—तुम निशाने से चूक गये भील ! यह तुम्हारा तीर लज्जित-सा होकर पृथ्वी में सिर छिपा रहा है। जिस काम में यह असफल रहा उसे तुम पूरा कर दो भील !

भील—मुझे क्षमा करो देवी ! हम तो जंगली जानवरों का शिकार खेलते हैं।

राज्यश्री—हाँ, हाँ। तभी तो मैंने कहा कि तुम अपने शिकार से चूक गये।

भील—(किंकर्तव्य-विमूढ़ सा होकर) यह आप क्या कह रही हैं ?

राज्यश्री—ओह ! तुम समझे नहीं। वास्तव में तुम हमें स्त्रियाँ समझ रहे हो। भील ! असल में आज तक किसी ने हमें ऐसा नहीं समझा। हमें तो काननचारी जन्तु ही समझा गया है।

भील—क्या इस विपत्ति में मैं आपकी सेवा कर सकता हूँ ?

अलका—हाँ, तीन दिन से महारानी ने कुछ नहीं खाया-पिया। इस जंगल में क्या खाने के लिए कुछ नहीं है ?

राज्यश्री—मुझे जीवन में बहुत निराश होना पड़ रहा है भील ! मैंने समझा था तुम आ गये हो। विधाता ने इस नश्वर शरीर को सार्थक करने के लिए एक भूखा भील भेजा है। वास्तव में निराशा मेरी बचपन की साथिन है। वह मुझे छोड़ेगी क्यों ?

भील—बड़े व्यक्तियों का जीवन बड़ा मूल्यवान् होता है देवि ! और फिर जीवन ही से तो सब कुछ है।

राज्यश्री—बड़े और छोटे के इस अन्तर को इतना व्याप्त क्यों कर दिया गया है ? भील, क्या तुम जानते हो—बड़े व्यक्तियों का जीवन कैसा होता है ?

भील—हम भील क्यों जानने लगे महारानी !

राज्यश्री—जिनके सिर पर मृत्यु प्रेत की छाया की तरह नाचे। किसी बन्दीगृह की फ़ौलादी सुलाखें जिनकी प्रतीक्षा में रहें और चमकती हुई तलवारें जिनकी स्वागत करने के लिए हरदम प्रस्तुत रहें—ऐसे बड़े आदमियों का जीवन कभी जानने की कोशिश मत करना।

नेपथ्य से गान

जगती में भय का नाम न ले तू निर्भय होकर चल मानव !
पर्वत ने छाती तानी हो,
हँसती बिजली दीवानी हो,
मेघों के मुँह में पानी हो,
तू भर छाती में लाल लपट मस्ताना बनकर चल मानव।
तू निर्भय होकर चल मानव।

भील—(ध्वनि की ओर देखकर) भील कन्या ! मेरी लड़की।

राज्यश्री—(सोचने की मुद्रा में) 'तू निर्भय होकर चल मानव' जिसकी यात्रा ही समाप्त हो गई हो वह चले कहाँ ? (भील की ओर देखकर) भील !

भील—महारानी !

राज्यश्री—मैं तुम्हारी लड़की से मिलूँगी। वह कितना अच्छा गाती है ! तुम सब कितने अच्छे हो !

भील—हम नीच भील और आप राजवंश से सम्बन्ध रखनेवाली एक महारानी।

राज्यश्री—उन लुटेरों का नाम न लो भील। राजा लोग कैसे होते हैं, तुम यहाँ जंगल में बैठे यह क्या जानो ? प्रजातन्त्र की आड़ में अपना कोष भरने के लिए आदमियों का शिकार खेलनेवाले उन जानवरों का नाम न लो।

भील—आदमियों का शिकार ?

राज्यश्री—हाँ ! आदमियों का शिकार। वे भेड़िये होते है। भूखे भेड़िये। लेकिन तुम यह सब न समझ सकोगे।

अलका—महारानी, अब चलना चाहिए।

भील—चलिए वह सामने हमारी जीर्ण कुटी है। आपके कष्ट में यदि मैं हाथ बँटा सकूँ तो अपने को धन्य मानूँगा।

(सबका प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

चौथा दृश्य

समय—सन्ध्या

(विन्ध्याटवी में राज्यश्री की खोज में व्यस्त हर्षवर्धन निराश अवस्था में अपने शिविर के बाहर की शिला पर। दूर क्षितिज पर सूर्यास्त को देखते हुए)

हर्ष—आज का दिन भी व्यतीत हो गया। सूर्य अस्तगामी हो रहा है। अर्जुन को अब तक लौट आना चाहिए था। बहिन की जीवन-नौका न जाने किस आपद्-भँवर में डगमगा रही है ? दिवंगत पिता की आत्मा तड़प रही है। प्यारे भैया भी अपूर्ण धारणाओं की

ज्वाला हृदय में लिये चले गये। हर्ष तुम्हारे सम्मुख निराशा का महासागर हिलोरें ले रहा है। कितनी भीषण लहरें उठ रही हैं। उनकी लपलपाती जिह्वाएँ तुम्हारे गौरव का सर्वसंहार किया चाहती हैं! इस प्रयास में असफल हो कर क्या तुम लौट सकोगे?

(अमात्य अर्जुन का प्रवेश)

अर्जुन—युवराज! महारानी का पता चल गया।

हर्ष—कहाँ है वह? तुमने आज मेरी सब चिन्ताएँ दूर कर दीं। क्या उद्धव भील का स्थान मिल गया था?

अर्जुन—वे मेरे साथ ही आये है। उनके साथ एक और साधु भी आप के दर्शनार्थ पधारे हैं। परन्तु समय खोने का नहीं, महारानी राज्यश्री का जीवन......

हर्ष—क्या कहा मन्त्री! यह क्या अनिष्ट......

अर्जुन—अभी आपको ज्ञात हो जायगा युवराज! मुझे उनको उपस्थित करने की आज्ञा दीजिए।

हर्ष—तुरन्त ले आओ।

(अर्जुन का प्रस्थान)

हर्ष—प्रिय बहिन! जब तक इन भुजाओं में बल है, तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

(सेनापति अर्जुन, उद्धव भील तथा दिवाकर मित्र का प्रवेश)

हर्ष—मुझे क्षमा कीजिएगा। साधारण उपचार की दृष्टि से मैं आपका स्वागत नहीं कर सका। राज्यश्री के सम्बन्ध में आप क्या समाचार लाये हैं?

भील—महारानी राज्यश्री ने सतीव्रत के अवलम्बन का निश्चय किया है!

हर्ष—सतीव्रत? भील, वह कहाँ है?

दि० मि०—इस स्थान से लगभग दो मील के अन्तर पर।

हर्ष—(सेनापति को सम्बोधन करके) शीघ्र घोड़ा तैयार करो सेनापति!

(सेनापति अभिवादन करके चला जाता है। हर्षवर्धन चिन्ता की मुद्रा में इधर-उधर घूमने लगते हैं। सहसा कुछ सोचकर तथा दिवाकर मित्र की ओर देखकर)

हर्ष—उद्धव भील को तो मैं जानता हूँ। क्या आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूं ?

दि० मि०—समय स्वयं मेरा परिचय देगा युवराज ! इस समय तुरन्त हमारे उद्देश्य की पूर्ति होनी चाहिए। आज एक मास से मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में था। बहिन राज्यश्री को सुरक्षित रखने में भीलराज को कुछ सहायता मैं भी देता रहा हूँ।

हर्ष—मैं तुम्हारा बहुत आभारी हूँ। राज्यश्री की सहायता करके तुमने मेरे लुटते हुए सर्वस्व की रक्षा की है। मैं इसका प्रतिकार···

दि० मि०—यह न कहो युवराज ! हमने अपना कर्तव्य पालन किया है। तुम्हारे परिवार के प्रति मेरा कुछ ऋण है। देवगुप्त के मित्र के रूप में मैंने भी राज-परिवार का कुछ अनिष्ट चिन्तन किया था। मुझे संतोष है कि आततायी को उचित दण्ड मिला। मेरा पाश्चात्ताप अभी अवशिष्ट था। उसको अब मैं सम्पूर्ण कर रहा हूं।

(सहसा दूत का प्रवेश)

दूत—जय हो देव ! अमात्य अर्जुन आपकी प्रतीक्षा में हैं।

हर्ष—तो चलो ! आप लोग भी चलें।

सब का प्रस्थान

(पट-परिवर्तन)

पाँचवाँ दृश्य

समय—संध्या

(विन्ध्याटवी की तलहटी में)

(राज्यश्री चिता-निर्माण कर रही है। अलका एक ओर खड़ी अश्रु-स्राव कर रही है। नेपथ्य से शोक मिश्रित ध्वनि आ रही है। चिता-निर्माण कर रानी मन्द गति से अलका के समीप जाती है।)

राज्यश्री—यह क्या अलके ! तुम्हारी सखी स्त्रियोचित मर्यादा का पालन करे और तुम इतनी खिन्नमना हो ? यह तुम्हें शोभा नहीं देता।

अलका—महारानी, मुझे दुःख है कि स्वयं स्त्रियोचित धर्म का पालन करती हुई तुम मेरे धर्म के पालन में बाधक होना चाहती हो। जब दावानल भभक उठता है तथा उसकी सर्वसंहारक लिप्सा बड़े-बड़े तरुओं को अपनी लपेट में ले लेती है तो उन वृक्षों पर आश्रित खगवृन्द कहीं उड़ नहीं पाते अपने आश्रयदाता के साथ ही वे भी भस्मसात् हो जाते हैं। महारानी, मुझ पर एक अनुकम्पा करो। जिन चरणों के साथ मेरा चिर-बन्धन हो चुका है उन्हीं के साथ लिपटे हुए मुझे भी अमर गोद में सो जाने दो।

रा०श्री—कैसी बहकी हुई बातें करती हो अलका ! संसार में सबको अपना कर्तव्य निवाहना है। तुम्हें मोह का परित्याग कर अपना कर्तव्य पालन करना होगा। तुम जानती हो मेरे हार्दिक संदेश को तुम्हारे अतिरिक्त और कोई वर्धनों तक नहीं पहुँचा सकता। (पत्र देती हुई) यह लो मेरा पत्र। किन्तु यह पत्र अनेक विषयों में मूक है जिनको तुम ही मेरे भैया को ज्ञात करा सकोगी। मेरे हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही है अलके ! परन्तु अब तो वह इस चिता-ज्वाला के साथ तद्रूप हो जायगी।

(भील-वाला का प्रवेश । वह सहसा चीत्कार कर उठती है)

भील वाला—महारानी ! यह क्या ? यह चिता किसके लिए ?

रा०श्री—एक अनावश्यक पिण्ड को जलाने के लिये। जिसकी आवश्यकता इस संसार में नहीं उसको दूसरे संसार में पहुँचाने के लिये।—

अलका—महारानी ! अपने लिये तुम ऐसे शब्दों का प्रयोग कर रही हो, यह मेरे लिये असह्य है।

भील बाला—तो क्या महारानी स्वयं—

अलका—हाँ ! महारानी स्वयं।

भीलवाला—नहीं होगा यह महारानी। मैं अपना जीवन देकर भी तुम्हें ऐसा न करने दूँगी।

राज्यश्री—मेरा कर्तव्य पुकार रहा है। अमर लोक की वीर क्षत्राणियाँ मेरी प्रतीक्षा में हैं। मेरा मार्ग बन चुका है। अब कोई मुझे रोक नहीं सकता। मुझे मार्ग दो (चिता की ओर बढ़ती है। अलका और भील-बाला दोनों "नहीं" "नहीं" कहती हैं। परन्तु महारानी बढ़ती जाती है। चिता के समीप पहुँचकर पूजा-सामग्री को उठाकर महारानी चिता प्रज्वलित करती है। पीछे से शोक मिश्रित ध्वनि का मन्द वाद्य सुनाई देता रहता है। अलका और भील बाला भय एवं शोक-मिश्रित चितवन से देखती एवं अश्रुस्राव करती हैं। महारानी पूजा में निरत हो जाती हैं। मन्दध्वनि में गीत गाने लगती है। साथ-साथ अलका एवं भील वाला भी प्रार्थना स्थिति में बैठ जाती हैं तथा गाने लगती हैं।)

सङ्कट हर करतार !
विकट लहरियाँ झँझरी नैया,
ज्वार उठा है दूर खिवैया,
हे करुणाकर पार करैया,
कर दे नैया पार।
सङ्कट हर करतार !

से धर्म की कर्णकटु ध्वनि निकल रही। ईश्वर ही बचाये! बत्तीस दाँतों में जीभ आ गई है।

दूसरा नागरिक—अजी भेड़ जहाँ जायगी वहीं मुँड़ेगी।

तीसरा नागरिक—कुछ भी हो, राज्य में शान्ति स्थापित हो रही है।

पहला—नागरिक—अजी शान्ति कभी ऐसे भी स्थापित हुई है? प्रतिदिन किसी बौद्ध की नाक कटेगी और किसी शैव की नानी मरेगी। देखते नहीं कन्नौज में जब से वह बड़ी नाकवाला चीनी बगलाभक्त आया है, राष्ट्र-विधान कैसे बदल रहा है? तुम भी एक ही ढपोल-शङ्ख हो।

दूसरा नागरिक—बगुला कौन जी?

पहला नागरिक—अरे वही हुएन्त्सांग। नाम है या शैतान की आँत? और हमारे महाराज भी थाली के बैंगन ही ठहरे! वर्धनों के कुलधर्म का टाट ही उलट दिया!

चौथा नागरिक—हुएन्त्सांग? वह चीनी यात्री? वह तो सात घाट का पानी पिये है। महाराज को ऐसी पट्टी पढ़ाई कि अपने लिए मैदान एकदम साफ़। बन्दर की बात मछन्दर जानता है। महाराज के मर्म को छूकर अहिंसा का ऐसा ढोंग रचा कि महाराज मोम की नाक बन गये, नहीं तो······

पहला नागरिक—तुम्हें याद है जी महाराज की वह प्रतिज्ञा? उन्होंने यज्ञोपवीत को छूकर कहा था—जब तक भैया के शत्रुओं से भारत को हीन नहीं कर दूँगा दाहिने हाथ से भोजन नहीं करूँगा—कैसी निर्विशङ्क भावना थी?

दूसरा नागरिक—हमारे महाराज वीर हैं विजिगीषु हैं।

तीसरा नागरिक—अब तक वे उस प्रतिज्ञा को निभा रहे हैं।

दूसरा नागरिक—किन्तु कब तक निभायेंगे? बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी?

तीसरा नागरिक—किन्तु महाराज सब धर्मों को एक आँख से देखते हैं। एक ओर मन्दिर दूसरी ओर विहार। जनता को व्यक्तिगत धर्म अवलम्बन करने की स्वतन्त्रता है।

दूसरा नागरिक—यह ? यह ख़ूब कही आपने ? अजी जब विहारों की घण्टा-ध्वनि कान में पड़ती है तो सारा मजा किरकिरा हो जाता है। छाती पर मूँग दली जाती है।

तीसरा नागरिक—धर्म इतना सँकरा नहीं कि आप विहार की घण्टा-ध्वनि को भी हज़म न कर सकें। सबको अधिकार होना चाहिए कि वह अपने इच्छानुसार धर्म धारण करे। यही शान्ति का मूल स्रोत है।

चौथा नागरिक—यह बात ? उस दिन दानपात्र पर महाराज के हाथ से बना हुआ एक एक चित्र देखा। एक ओर अभय-मुद्रा में बुद्ध-प्रतिमा थी। दूसरी ओर एकमुख-लिंग शिवमूर्त्ति ! एक ओर मन्दिर दूसरी ओर स्तूप। महाराज की उदारता का परिचय इससे ख़ूब मिलता है। साथ ही भाव और चित्रकला का सामञ्जस्य भी ख़ूब बन पड़ता था।

तीसरा नागरिक—हर्ष क्या नहीं हैं ? वे एक ही साँस में कवि, चित्रकार और योद्धा हैं। उनकी तूलिका उतनी ही ज़ोरदार है जितनी उनकी तलवार। उनकी वाणी में उतना ही बल है जितना उनकी बाँहों में। उनकी छाती में पानी भी है और आग भी।

सातवाँ दृश्य

समय—प्रात

(कन्नौज के मन्त्रणा-भवन में राज्यश्री और हर्षवर्धन वार्तालाप के सूत्र में। पास ही प्रधान-अमात्य अर्जुन बैठे हैं।)

हर्षवर्धन—नहीं बहन, राजसिंहासन में मुझे कोई आकर्षण ही नहीं दिखाई देता। मुझे इस अभिषेक के लिए प्रेरित न करो। यह काँटों का ताज बड़ा भीषण गहना है।

राज्यश्री—जो आकर्षण की चीज़ ही नहीं उसमें आकर्षण कैसा भैया? यह तो मातृ-भूमि की सेवा का बोझ है। इसे उठाना ही होगा।

हर्षवर्धन—मैं तो एक साधना कर रहा हूँ बहिन! मुझे इस भूल-भुलैया में न उलझाओ। मेरी साधना को अपने पथ पर अग्रसर होने दो।

राज्यश्री—तुम्हारी साधना अबाध गति से चलती रहे भैया! सिंहासन उसमें रुकावट नहीं डालेगा।

हर्षवर्धन—मैं तो भरत का पादुका-व्रत लेकर सिंहासन की ओर देखता हूँ। आज भैया जीवित होते तो देखते कि वर्धनों का यह राष्ट्र कितना विस्तृत है। उन्हें बौद्ध धर्म पर कितनी आस्था थी!

राज्यश्री—अतीत को सोया रहने दो भाई। इन कभी न पुरनेवाले घावों की चर्चा ही क्या? (आँखों से दो अश्रु-बिन्दु ढुलक पड़ते हैं)

हर्षवर्धन—ओह! मैं भी पागलों की तरह इस गुजरी हुई कहानी को भूल नहीं सकता। तुम्हारी पलकें गीली कर देता हूँ।

राज्यश्री ये तो दो नासूर हैं भाई, जो अविरत गति से बहते ही रहते हैं (आँसू पोंछकर) अस्तु। छोड़ो उस कहानी को। राज्यारोहण की बात चलाओ।

अर्जुन—राज्यसिंहासन खाली है युवराज! उसे खाली रखना ग़लती है।

हर्षवर्धन—नहीं मन्त्री! वह खाली कहाँ है? उस पर तो भैया के रक्त का निशान फहरा रहा है। शत्रु उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकता। किन्तु......(सोचने की मुद्रा में)

अर्जुन—युवराज क्या सोच रहे हैं?

हर्षवर्धन—सोच रहा हूँ कि भैया की आत्मा क्या कहती होगी। मैं शशाङ्क से उनकी मृत्यु का प्रतिकार भी न ले सका। मेरी प्रतिहिंसा क्यों अधूरी रही जा रही है? जब तक इस उद्देश्य की पूर्ति न होती, मुझे राज्यतिलक से कोई सम्बन्ध नहीं।

राज्यश्री—यह सब तुम सिंहासनारूढ़ होकर भी कर सकते हो भैया ! आज से छः वर्ष पहले भाई राज्यवर्धन हमें सदा के लिए छोड़ गये थे। और यह छः वर्ष तुमने कितना कड़ा समय देखा। आज राज्य में शान्ति स्थापित हो चुकी है। भगवान बुद्ध का वरदान हर एक आँख में चमक उठा है। अब यह विलम्ब न होना चाहिए।

(हुएन्त्सांग का प्रवेश, सब खड़े होकर अभिवादन करते हैं)

हुएन्त्सांग—क्या प्रसंग चल रहा है युवराज !

राज्यश्री—राज्याभिषेक के बारे में सोच रहे हैं महात्मन् ! भैया को राज्यारोहण स्वीकार नहीं।

हुएन्त्सांग—वह क्यों ?

राज्यश्री—कहते हैं—मैं साधना कर रहा हूँ। मेरे पथ में कोई आकर्षण न होना चाहिए।

हुएन्त्सांग—बहुत उच्च विचार हैं। परन्तु राजधर्म का पालन भी तो राजा का कर्तव्य है।

हर्षवर्धन—सो तो मैं कर ही रहा हूँ महात्मन् ! 'किन्तु वही एक कर्तव्य है'—यह मैं नहीं मान सकता। इस दिल में एक तूफ़ान के उग्र झकोरे सदा चलते रहते हैं। मुझे शान्ति नहीं मिली महाभिक्षु !

हुएन्त्सांग—शान्ति तो अन्दर से निकाली जाती है युवराज ! इन तूफ़ानों के झकोरों पर क़ाबू पाना सीखो। अपने कर्तव्य से पतित होने पर ही अशान्ति होती है। और फिर तुम्हारी मूक साधना में यह राज्यतिलक कोई बाधा नहीं डालेगा।

(हर्ष सोचने की मुद्रा में)

राज्यश्री—महात्मा की पीयूष से सनी वाणी से कितनी सांत्वना मिलती है भैया ! उनके विचारों की भी परवाह न करोगे ?

हर्षवर्धन—यह मुझमें शक्ति ही नहीं है बहन कि उनके प्रतिकूल जाऊँ। और फिर आप लोगों के आग्रह को कब तक अस्वीकार करता रहूँगा।

नेपथ्य से गान

मिलेगा आज हृदय का मीत।
तेरा जीवन चलना राही तू काहे भयभीत।
गरज रहा है सागर मग में,
अटक रहे हैं पत्थर डग में,
तू चलता चल, नहीं जायेगी-
सुन्दर बेला बीत।
मिलेगा आज हृदय का मीत॥

राज्यश्री—भिक्षुणी गा रही है भैया!

हर्षवर्धन—भिक्षुणी !! हाँ! (सोचते हैं)

(भिक्षुणी का प्रवेश, सब खड़े होते हैं)

भिक्षुणी—(हुएन्त्सांग की ओर देखकर) ओह आप। कितने दिनों से आशा लगी थी!

हुएन्त्सांग—मुझे आपका परिचय चाहिए।

भिक्षुणी—मेरा परिचय? जो मैं दिखाई दे रही हूँ, उससे अधिक मैं कुछ भी नहीं हूँ।

हुएन्त्सांग—भारत की इस पुण्यस्थली पर ऐसी आत्माओं की अभी कमी नहीं।

भिक्षुणी—अब सब ठीक होगा। तुम आ गये! (प्रस्थान)

हुएन्त्सांग—(भिक्षुणी के पीछे जाते हुए) ठहरो भिक्षुणी! (प्रस्थान)

हर्षवर्धन—बहन! देखी यह भगवान् बुद्ध की पूत छाया?

राज्यश्री—हाँ भैया! पारस के स्पर्श सी मन को कुन्दन बना के चली जाती है।

हर्षवर्धन—(अर्जुन को सम्बोधन करके) मन्त्री! राजतिलक के उत्सव के लिए सब तैयारी आरम्भ कर दो।

मन्त्री—जैसी आज्ञा! (प्रस्थान)

हर्षवर्धन—चलो बहन! अभी चलकर विहार का निरीक्षण करना होगा। (प्रस्थान)

पट-परिवर्तन

आठवाँ दृश्य

समय—दोपहरी

(प्रयाग के राजपथ पर कुछ नागरिक)

पहला नागरिक—इसे कहते हैं आदर्श जीवन! सज्जनों की विभूति परोपकार के लिए ही होती है। छठी महामोक्ष परिषद् का उत्सव होनेवाला है। समस्त उत्तर भारत के नरेश आ रहे हैं। महाराज हर्ष इतने सम्पन्न होकर भी उस दिन भिक्षु बन जाएँगे।

दूसरा नागरिक—निर्धनता की लपेट से प्रजा की रक्षा का यह बहुत अच्छा प्रबन्ध है।

तीसरा नागरिक—सबको समान रूप से अन्न, वस्त्र, धन, रत्न मिलेंगे। इस महादान-भूमि पर वह दृश्य कितना सुन्दर होगा!

चौथा नागरिक—पाँच वर्ष पहले पाँचवीं परिषद् पर मैंने देखा—इन्द्र की भाँति वस्त्र धारण करके महाराज स्वर्ण, मोती, पुष्प लुटाते हुए चले थे और कहते थे—यह सब मैंने प्रजा के लिए एकत्र किया है। सब मतावलम्बियों को दान वितरणार्थ दिन नियत थे।

तीसरा नागरिक—फिर राजकोष और निजू धन वस्त्रालङ्कार आदि में से महाराज के पास कुछ भी न रहा।

दूसरा नागरिक—महाराज स्वयं स्वर्ण हैं। उन्हें अलङ्कार की क्या ज़रूरत है?

ती० नाग०—और राज्यश्री उस सोने पर सुहागा हैं।

चौ० नाग०—संसृति का समूचा इतिहास ऐसा उदाहरण पेश नहीं कर सकता। त्याग की ऐसी उज्ज्वल धारणा को लेकर चलने वाले

हर्ष एक अद्वितीय राजा हैं। आनेवाला समय उन पर गर्व कर सकेगा। (प्रस्थान)

(चित्रकार मातंग तथा कवि बाण का प्रवेश)

मातंग—दानपात्र पर चित्रलिपि में महाराज के हस्ताक्षर कला का एक कटा-छटा नमूना है।

बाण—क्यों नहीं ? एकदम नवीन। उस कलाकार के पास मौलिकता और प्रतिभा तो ईश्वर-प्रदत्त हैं। किन्तु उनकी तूलिका से उनकी वाणी अधिक प्रभावशाली है। उनका नागानन्द उनकी कविता शक्ति का एक उज्ज्वल रत्न है।

मातंग—उनकी सुचारु चित्रण-चातुरी भारत के इतिहास में एक नई चीज़ है। अधिक प्रभावशाली उनका फलक है अथवा काव्य—इसे एक चित्रकार की दृष्टि से भी देखो कविवर !

बाण—कुछ भी हो। आज तक ऐसा सम्मिश्रण भारत के किसी सम्राट् में नहीं देखा गया।

मातंग—निश्चय।

बाण—महामोक्ष-परिषद् के लिए आपके चित्र तैयार हैं ?

मातंग—सब ठीक हैं।

बाण—गंगा और यमुना के इस संगम पर पाँच वर्ष की इकट्ठी की हुई सम्पत्ति को महाराज एक ही दिन में दान कर देंगे। असंख्य रत्नों से भगवान् बुद्ध, शिव तथा सूर्य की पूजा होगी।

मातंग—सभी राज्यकर्मचारी प्रयाग आ पहुँचे हैं। महादान के उपलक्ष्य में आयोजन हो रहा है।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

नवाँ दृश्य

समय—प्रातः

(प्रयाग में गंगा यमुना के संगम के समीप एक दिव्य रंगशाला। मञ्च पर काषाय-आच्छादित बुद्ध की स्वर्ण-प्रतिमा के साथ शिव और सूर्य की प्रतिमाएँ भी पड़ी हैं। एक ओर रत्नराशि, वस्त्र और मूल्यवान् द्रव्य रखे हैं। भिक्षु, ब्राह्मण, निर्धन, विहार-युवक तथा दर्शकगण बैठे हैं

(गान)

आज स्वर्ण विहान आया।
धुंधलके को चीर ऊषा,
साथ लाई लाल पूषा,
आज प्राची में किसी के,
आगमन का गान छाया।
आज स्वर्ण विहान आया॥
आज नीड़ों पर गुलाली,
पञ्छियों के घर दिवाली,
रश्मियों से स्वर्ण डलियाँ,
तोड़ कोई छान लाया।
आज स्वर्ण विहान आया॥

(राज्यश्री, हुएन्त्सांग तथा अमात्यवर्ग के साथ महाराज हर्ष का प्रवेश। उनके साथ कुछ करद भूपाल हैं। पीछे-पीछे भिक्षुणी आ रही है। स्वागतार्थ सब खड़े होते हैं। मञ्च पर पड़ी प्रतिमाओं की वन्दना कर सब उचित स्थानों पर बैठते हैं)

मन्त्री—(दर्शकों से) बन्धुओ ! समस्त भारत में अद्वितीय यह परिषद् आज फिर पाँच साल के पश्चात् हो रही है। महाराज हर्ष एक

आदर्श शासक के रूप में हमें मिले हैं। महारानी राज्यश्री का पावन व्यक्तित्व भी हमें स्वच्छ जीवन का उपदेश देता रहा है। महात्मा हुएन्त्सांग के संसर्ग से राष्ट्र ने जो कुछ भी प्राप्त किया उसके लिए हम उनसे कभी भी उऋण नहीं हो सकते। अब दान से पहले प्रतिमा-पूजन होगा।

(हुएन्त्सांग प्रतिमाओं से आच्छादन हटाते हैं। सब वन्दना करते हैं। पूजा होती है तत्पश्चात् महाराज हर्ष सबको दान करते हैं। भिक्षुणी गाती है।)

आज मिल गायें मंगल-गान।
आज शान्ति का निर्झर बहकर सींचे चारों छोर।
सागर की धड़कन मिट जाये, उठे शीत हिलकोर॥
हृदय से हृदय मिलें अनजान।
आज मिल गायें मंगल-गान॥

हर्ष—(दान के पश्चात्) प्रजाजन! आज एक युग पुरुष के रूप में महात्मा हुएन्त्सांग हमारे मध्य विराजमान हैं। सर्व प्रथम उनका उचित सम्मान करते हुए मैं भगवान् बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा उन्हें उपहार रूप में देता हूँ।

(सब ओर से 'साधु' 'साधु' का नाद)

बन्धुओ! इस राष्ट्र के निर्माण करने में हमें कितनी क्रान्तियों में से गुजरना पड़ा है—यह आप सब जानते हैं। धर्म के नाम पर कितने कुचक्र हुए! उन सबको पार करके आज हम इस महादान-भूमि पर एकत्र हुए हैं। आओ, हम अपने धार्मिक द्वेषों को भुलाकर गंगा-यमुना की तरह मिल जायँ। वह मिलन ही राष्ट्रधर्म है। राष्ट्र को इस मिलाप और एकता की आवश्यकता है। आओ हम मिलकर प्रण करें कि हम एकता के पुजारी बनकर राष्ट्र को चार चाँद लगा दें। महात्मा हुएन्त्सांग से हम इस प्रण की सफलता के लिए आशीर्वाद की कामना करते हैं।

(खड़े होकर सबका 'गान' हुएन्त्सांग आशीर्वाद देते हैं।)

(गान)

पूर्ण हो गई मन की साध ।

मिले हृदय से हृदय अजान,
हुआ एकता का जय-गान,
जाग उठे हैं गरिमावान— जागे
आज राष्ट्र के सोये भाग ।
पूर्ण हो गई मन की साध ॥

ले चुटकी में लाल गुलाल
चलो सजायें माँ का भाल,
हम बाँहों में बाहें डाल,
अर्पण कर दें प्रेम अगाध ;
पूर्ण हो गई मन की साध ॥

अजेय भारत

भारतीय इतिहास का एक सुनहला हिन्दू-पृष्ठ

अभिनयकाल—२५ मिनट

पात्र-परिचय

पुष्यमित्र	शुंग-नरेश
अग्निमित्र	युवराज
मालविका	युवराज की पत्नी
पातञ्जलि	एक महर्षि
मीनैण्डर	यूनान नरेश

मन्त्री, भिक्षु

पहला दृश्य

समय—उपाकाल

[साकेत के समीप अपने शिविर के वाहर एक शिला पर महाराज मीनैण्डर अपने मन्त्री के साथ वार्तालाप के सूत्र में। मीनैण्डर के मस्तक पर विजय का गर्व। मन्त्री की आँखों में व्यंग की छाया]

मीनैण्डर—देखो मन्त्री ! यह भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि है।

मन्त्री—वहुत वेजोड़ है महाराज !

मीनैण्डर—बिल्कुल वेजोड़ है। ये कल-कल करती हुई नदियाँ, ह पानी पर नाचता हुआ नन्हा-सा सूर्य. यह फूलों की वस्ती। वायु ो हिलकोरों में झूमते हुए वड़े-वड़े पौदे—ये सब मन में जाने ान्ति और सान्त्वना का सञ्चार कर रहे हों। जी चाहता है—वस हीं सारा जीवन बिता दूँ।

मन्त्री—भारत पर विजय प्राप्त करना टेढ़ी खीर है महाराज !

मीनैण्डर—तुम सच कहते हो मन्त्री ! यह वीरभूमि है। तो भी ुम साकेत तक पहुँच चुके हैं। अब पाटलीपुत्र पर आक्रमण की ोजना पूर्ण हो रही है।

मन्त्री—मगध-नरेश के साथ लोहा लेने के लिए वहुत सावधान ोना होगा। यहीं हमारे पूर्वजों को अपनी पराजय समेटकर लौट ाना पड़ा था।

मीनैण्डर—कौन ? शाह सिकन्दर ?

मन्त्री—हाँ महाराज !

मीनैण्डर—उसमें और हममें वहुत अन्तर है मन्त्री। वह केवल वेजय-लालसा से भारत में आया था। भारत पर अपनी अमिट छाप लगाने आया था। और मैं............मैं भारत का एक व्यक्ति

होकर, भारत के स्थूल शरीर का एक अंग होकर भगवान् तथागत की पूजा करने आया हूँ।

मन्त्री—किन्तु सीमान्तेश !

मीनैण्डर—क्या मन्त्री ? तुम कहते-कहते रुक क्यों जाते हो ? मैं कई दिनों से कुछ ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि तुम्हें कुछ कहना होता है किन्तु तुम कह नहीं पाते। तुम अपना हृदय खोलकर रख दो मन्त्री ! मैं उस पर उचित विचार करूँगा।

मन्त्री—महाराज ! मैं आपके हाथ में रक्त से लथपथ तलवार देखा करता हूँ तो मुझे विस्मय-सा होने लगता है।

मीनैण्डर—वह क्यों ?

मन्त्री—सिद्धांत और क्रिया में इतना अन्तर देखकर मुझे शङ्का-सी होने लगती है—भगवान् बुद्ध का अहिंसा का उपदेश सारहीन-सा दीखने लगता है।

मीनैण्डर—नहीं 'मन्त्री ! अहिंसा की सीमा इतनी दूर तक खींचकर न ले जाओ। उसी अहिंसा की स्थापना के लिए तो मुझे हिंसा का आश्रय लेना पड़ रहा है।

(सेनापति का प्रवेश)

सेनापति—(अभिवादन करके) सरयू नदी के पूर्वीय तट पर हमारी सेना का पिछला खण्ड साकेत नरेश पर विजय प्राप्त करके आगे बढ़ चुका है। मगधपति पुष्यमित्र की राज्य सीमा में जाने का साहस करने से पहले आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है।

मीनैण्डर—कहीं न रुको सेनापति ! पुष्यमित्र के शासन का अन्त ही तो बौद्धधर्म को पुनर्जीवन देगा। देखते नहीं कितने मठों को उसने हिन्दू धर्म की ज्वाला में राख कर डाला। शान्ति का अमर सन्देश देनेवाले भिक्षुओं को मौत के घाट उतार दिया। उस काल मेघ को छिन्न-भिन्न करके सूर्य की तरह चमक उठो सेनापति !

सेनापति—जैसी आज्ञा।

(नेपथ्य से भिखारी का गाना)

"दो दिन का कोकिल वसन्त ।"

मीनैण्डर—(भिखारी को आते देखकर) भारत का भिखारी ।

(भिखारी समीप आ जाता है)

(गान)

दो दिन का कोकिल वसन्त ।
दो दिन बगिया में खिलें फूल,
दो दिन कुसुमों की उड़े धूल,
दो दिन भँवरों के उठें गान,
सुरभित सरिता के श्याम कूल ।
फिर पतझड़ सब हाय हन्त ।
दो दिन का कोकिल वसन्त ॥
दो दिन आमों पर बौर अरी,
दो दिन मधु ऋतु, का दौर अरी,
कल गान सुना, कुछ स्नेह लुटा,
जब दो दिन रहना और अरी ।
इस दो दिन की महिमा अनन्त ।
दो दिन का कोकिल वसन्त ॥

मीनैण्डर—क्या चाहते हो भिखारी !

भिखारी—कुछ नहीं ।

मीनैण्डर—क्यों तुम भिखारी हो न ?

(भिखारी हँसता-हँसता जाने लगता है)

मीनैण्डर—अजीब देश है । देखो भिखारी ! मैंने कहा था—तुम भिखारी हो न ?

भिखारी—तुम कौन हो ?

मीनैण्डर—मैं ? निकट भविष्य मेरा परिचय देगा भिखारी ! मीनैण्डर का नाम तुमने सुना है ?

भिखारी—मीनैण्डर ?

मीनैण्डर—हाँ, भारत-विजेता मीनैण्डर।

भिखारी—(मीनैण्डर को ऊपर से नीचे तक देखकर हँसता हुआ। बहुत ऊँचा स्वप्न है। बहुत भयङ्कर उड़ान है (जाता है)

मीनैण्डर—बहुत भयङ्कर उड़ान है। देखा जायगा। मन्त्री! पुष्यमित्र के विरुद्ध युद्ध में जाने की पूरी तैयारी हो जाए। (जाता है)

मन्त्री—धर्म के नाम पर कितने युद्धों का सूत्रपात हो रहा है।

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

समय—प्रात

पाटलीपुत्र के समीप बौद्ध मठ में दो भिक्षु। एक त्रिपिटक को सामने रखे परिशीलन में व्यस्त है। कभी-कभी कनखियों से दूसरे भिक्षु को देख लेता है जो छाछ पी रहा है।

पहला—सुना है—महाराज मीनैण्डर साकेत तक पहुँच गये हैं।

दूसरा—बिल्ली के भागों छींका टूटा।

पहला—सो क्यों ? धर्म की रक्षा के लिए ही महा-पुरुषों का जन्म होता है।

दूसरा—अरे भाई ! चोटी कुतिया भी कभी जलेबियों की रखवाली कर सकती है। ये लोग तो टट्टी की ओट में शिकार खेलनेवाले हैं। रही धम्म की बात। वह तो अब तवे की बूंद ठहरी। महाराज पुष्यमित्र की तो परछाईं से भी डर लगता है।

पहला—तो क्या महाराज मीनैण्डर धम्म को पुनर्जीवित करने के लिए नहीं आये ?

दूसरा—सुना तो ऐसा ही है।

पहला—तो क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता ?

(नेपथ्य से आवाज़)

एक भिक्षुणी—नहीं, नहीं, दया करो।

राजकर्मचारी—मार डालो, पकड़ लो, आग लगा दो, भून डालो।

पहला—क्या, राजकर्मचारी ?

दूसरा—हैं, बाप रे। (भागता है)

पहला—कहाँ ?

दूसरा—मीनेण्डर महाराज के पास (जाते हैं)

(मठ आग के अर्पण हो जाता है)

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

समय—प्रातःकाल

(पाटली-पुत्र की राजवाटिका। जूही की डाली से माली फूल तोड़ रहा है। मालिन माला बीनती है।)

मालिन—आज किस बात का उत्सव है जी ?

माली—युवराज अग्निमित्र विजय प्राप्त करके आये हैं।

मालिन—विजय ?

माली—हाँ, हाँ, विजय। उन्होंने विदर्भ के राजा यज्ञसेन पर विजय प्राप्त की है।

मालिन—बड़े लोगों को लड़ने-भिड़ने की कितनी उमंग होती है ?

माली—तो क्या लड़ना-भिड़ना बुरा है ? अरी पगली ! यही तो मरदानगी है।

मालिन—और किसी के हार जाने पर यह लोग उत्सव मनाते हैं।

माली—तो कब मनायें ?

मालिन—महाराज यज्ञसेन के साथ झगड़ा किस बात पर हुआ ?

माली—झगड़ा-वगड़ा कुछ नहीं। लड़ाई युवराज की पत्नी मालविका के लिए हुई थी।

मालिन—मालविका?

माली—हाँ, मालविका। विदर्भ राज की नातिन थी। महाराज यज्ञसेन युवराज अग्निमित्र के साथ उसके पाणि-ग्रहण के विरुद्ध थे।

मालिन—इतनी-सी बात?

माली—अरे! यह इतनी-सी बात है? अब अगर समझ लो, समझ लो···कि तुम्हारा विवाह इस माली (अपनी तरफ़ इशारा करके) अर्थात् लक्खन महाराज से न होकर किसी और से हो जाता तो सच कहता हूँ मैं कट मरता।

मालिन—बस चुप रहो।

माली—मैं कहता हूँ—आज तक जितने भी युद्ध हुए हैं सब स्त्रियों के लिए।

मालिन—किसी स्त्री को युद्ध में लड़ते भी देखा है?

माली—यह खूब कही, वह तो चिनगारी छोड़नेवाली होती हैं। अ! अ! देखो जी वह चिनगारीवाला गाना ज़रा सुना दो। सुना दो न।

(मालिन गाती है, माली नाचता है)

(गान)

मत छेड़ो मैं हूँ चिनगारी।
सावन की काली रातों में,
रोती-रोती बरसातों में,
मैं झिलमिल करती जलती हूँ,
जुगनू की कोमल घातों में,
पर मुझे जलाते संसारी॥
मत छेड़ो, मैं हूँ चिनगारी॥
जब पीली पौ फट ज़ाती है,
कमलों को लिपट मनाती है,

मेरी छवि भँवरों के मन में,
कुछ-गुन गुन-गुन गुन गाती है,
मैं बिजली झंझा की मारी।
मत छेड़ो मैं हूँ चिनगारी॥
मैं फुलझड़ियों के दामन में,
मैं विरहिन के उन्मन मन में,
मैं नित्य सुलगती रहती हूँ
पीड़ित के बाधित क्रन्दन में,
मैं कभी किसी से कब हारी।
मत छेड़ो मैं हूँ चिनगारी॥

माली—वाह! वाह अ! अ! अ! देखो, माला बीन चुकी हो न?

मालिन—हाँ।

माली—लाओ, मुझे दे दो। देर हो रही है। अभी-अभी जाना होगा। युवराज भी वाटिका में आये होंगे।

(मालिन मालायें दे देती है) (प्रस्थान)

(युवराज अग्नि मित्र और मालविका का प्रवेश)

अग्निमित्र—यह है राजवाटिका। आज यहाँ उत्सव होगा। तुम्हारे स्वागत में जूही मुस्का रही है। (फूल तोड़ने लगता है)

मालविका—तोड़ो मत।

अग्निमित्र—(तोड़कर) अब तो टूट गया।

मालविका—टहनी से अलग हो गया अभागा।

अग्निमित्र—(ओस को अंगुली से छुड़ाकर) यह ओस गिर गई।

मालविका—रो पड़ा।

अग्निमित्र—उदास क्यों हो गई?

मालविका—नहीं तो।

अग्निमित्र—अच्छा! आओ (प्रस्थान)

(महाराज पुष्यमित्र और उसके मन्त्री का प्रवेश)

पुष्यमित्र—उत्सव के लिए सब तैयारी हो चुकी है मन्त्री ! आज युवराज़ के पराक्रम के गीत गाये जायेंगे।

मन्त्री— युवराज वीर है।

पुष्यमित्र—मुझे उसकी वीरता का अभिमान है। यज्ञसेन को एक ही दिन में पछाड़कर उसने अपनी वीरता की धाक जमा दी है।

मन्त्री—विदिशा में कलिंग-नरेश खारवेल के दाँत खट्टे करके युवराज ने अपने अनुपम विक्रम का परिचय दिया है।

(दूत का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन करके) ऋषि पातञ्जलि ने यह पत्र दिया है।

पुष्यमित्र—(पत्र पढ़ते हैं) नरेश ! यूनान प्रदेश के महाराज मीनैण्डर ने हिन्दू धर्म को निर्मूल करने के लिए भारत पर आक्रमण किया है। पाटली-पुत्र से छः मील परे उत्तर-पश्चिम में उसकी सेना खड़ी है। आज प्रातःकाल उसके कुछ सैनिकों ने हमारे यज्ञ में बाधा डाली है। रक्षा के लिए दूत भेज रहा हूँ। मीनैण्डर की सेना के साथ महाराज खारवेल के कुछ सिपाही भी हैं।

पातञ्जलि

पुष्यमित्र—मन्त्री।

मन्त्री—महाराज।

पुष्यमित्र—मीनैण्डर के बारे में कोई और समाचार आपको मिला

मन्त्री—साकेत-नरेश की पराजय के बाद तो कोई समाचार नहीं मिला।

पुष्यमित्र—उत्सव को स्थगित करो। और युवराज को मेरे पास भेजो।

मन्त्री—जैसी आज्ञा (प्रस्थान)

पुष्यमित्र—मीनैण्डर हिन्दूधर्म को निर्मूल करने के लिये भारत में आया है। और वह मगध के साथ लोहा लेगा। खारवेल महाराज तुम काली भेड़ का अभिनय करने लगे हो ?

(युवराज का प्रवेश)

युवराज—पिताजी ! चरणवन्दना !

पुष्यमित्र—युवराज ! क्या तुम जानते हो—सैनिक का क्या काम होता है ?

युवराज—अच्छी तरह समझता हूँ पिताजी ।

पुष्यमित्र—क्या ?

युवराज—लड़ना, जूझना और कट मरना ।

पुष्यमित्र—किस बात पर ?

युवराज—देश पर, आन पर ।

पुष्यमित्र—आज उत्सव होने जा रहा था किन्तु······

युवराज—कहिए, वीरों का उत्सव समरांगण में होता है पिताजी !

पुष्यमित्र—मालविका कहाँ है ?

युवराज—वाटिका में घूम रही है ।

पुष्यमित्र—तुम्हें एक बहुत भयङ्कर शत्रु से लड़ना है । महाराज मीनेण्डर मगध के पास आ पहुँचा है । आज ही महर्षि पातञ्जलि ने यज्ञ में उनके सैनिकों द्वारा एक बाधा की शिकायत का पत्र लिखा है ।

युवराज—आप निश्चिन्त रहें, मैं अभी जाता हूँ (जाने लगता है)

पुष्यमित्र—बहुत सावधानी से काम लेना । महाराज मीनेण्डर भागने न पाए । हो सके तो उसे जीवित बन्दी बनाकर लाओ ।

युवराज—जैसी आज्ञा (प्रस्थान)

पुष्यमित्र—साहस का पुञ्ज है । पराक्रम का अनूठा पुतला है ।

पट-परिवर्तन

चौथा दृश्य

समय—संध्या

(बौद्ध मठ की गंगा के समीप भिखारिन । सब ओर निस्तब्धता । भिखारिन गाते-गाते रुककर कभी-कभी गंगा की ओर टकटकी लगाकर

देखता जाता है। हवा का भूला-भटका झोंका पास के वट-वृक्ष को बीच-बीच में झकोरकर चला जाता है।)

भिखारी—(गाता है)

इस सूनी-सूनी दुनिया में दिल बुझा-बुझा-स रहता है।
जब रैन अँधेरी होती है,
जब दुनिया सारी सोती है,
यह आँसू भर-भर झोली में तब खोया-खोया रहता है।
इस सूनी-सूनी दुनिया में दिल ....॥ १ ॥
जब घन पर चन्दा चलता है,
सागर का हृदय मचलता है,
यह धीरे-धीरे तारों से कुछ चुपके-चुपके कहता है।
इस सूनी-सूनी........................॥ २ ॥

(भिक्षुओं का प्रवेश)

पहला—गाओ भिखारी!

दूसरा—तुम्हारे गाने में टीस है। और गाओ एक गान।

भिखारी—(देखकर) ओह, (राख की ओर इशारा करके) वह देखते हो क्या है?

पहला—क्या?

भिखारी—राख।

दूसरा—हाँ।

भिखारी—यह बौद्ध-विहार की राख है।

दूसरा भिक्षु—धर्म पर अत्याचार प्रकृति सहन नहीं कर सकती।

भिखरी—करती है भिक्षु! प्रकृति बहुत कुछ सहन करती है। धर्म और युद्ध। ये दोनों तो बनाये ही मानव को उल्लू बनाने के लिये हैं। बौद्ध-विहार जल रहा था, भिक्षुओं की छातियाँ छिद रही थीं। वायु उस समय भी चलता था, फूल उस समय भी हँसते थे। लपटों का धुआँ आकाश की उस समय भी पूजा करता था।

पहला भिक्षु—इस अत्याचार का प्रतिकार होगा भिखारी!

भिखारी—कभी हुआ है पगलो ? शक्ति ही संसार है। जिसके भुज-मूलों में किसी के दाँत तोड़ने की हिम्मत है वह महाराज है, धर्मी है, संसार उसका है।

पहला भिक्षु—सुना है युवराज अग्निमित्र महाराज मीनेण्डर के विरुद्ध युद्ध करने गये हैं। क्या होगा ?

भिखारी—क्या होगा ? वही जो हुआ करता है। कुछ हिन्दू मौत के घाट उतरेंगे, कुछ बौद्धों का गला कटेगा और प्रकृति हँसेगी। देखो भिक्षु ! प्रकृति ने इस विकट मानव को मारने के लिए उसे दो यन्त्र दिये हैं।

पहला—भिक्षु क्या ?

भिखारी—धर्म और युद्ध।

दूसरा भिखारी—धर्म बुरा नहीं, युद्ध बुरा है।

(भिखारी "इस सूनी···" का गाना गाता हुआ जाता है)

पहला भिक्षु—युद्ध होता है आकांक्षा के लिये। नाम धर्म का होता है।

दूसरा—यदि मीनेण्डर महाराज हार गये तो क्या होगा ?

पहला—उससे अधिक बुरा भी कभी हो सकता है ! (प्रस्थान)

(दो हिन्दुओं का प्रवेश)

पहला—कुछ सुना ?

दूसरा—ओं।

पहला—अरे कभी पीनक से छुट्टी भी मिलती है तुम्हें ?

दूसरा—ओं ?

पहला—मैंने कहा—"युवराज ने मीनेण्डर की सेना को ग्राम योजन खदेड़ दिया है।"

दूसरा—फिर से कहना, जरा फिर से कहना।

पहला—युवराज ने मीनेण्डर की सेना को परास्त कर दिया है।

दूसरा—यह बात ? ओं।

पहला—ओं।

दूसरा—देखो जी, यह युद्ध कैसे होता है ?

पहला—युद्ध ? देखो, दो योद्धा तलवार चलायें यानी हम और तुम। अगर मेरी तलवार तुम्हारी तलवार के ऊपर हो तो मैं विजयी, नहीं तो तुम।

दूसरा—यह तो ठीक नहीं।

पहला—और क्या ?

पहला—जिसकी तलवार नीचे हो वह विजयी होना चाहिए।

दूसरा—हः ! हः ! हः ! आदमी हो या खरगोश। हमने सैकड़ों लड़ाइयों के आधार पर यह बताई है।

पहला—आँ, यह बात ?

(भिखारी का "इस सूनी…"गाते हुए प्रवेश)

पहला—यह क्या ?

दूसरा—कोई भिक्षु होगा। चलो, चलें।

(प्रस्थान)

भिखारी—दुनिया कितनी शीघ्रता से बदल रही है। मीनैण्डर हार गये। सुना है, युवराज उन्हें वन्दी बनाकर ला रहे हैं। राजा लोग कितने पागल होते हैं। सचमुच पागल।

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

समय—सन्ध्या

(पाटलीपुत्र के राज्यप्रकोष्ठ में महाराज पुष्यमित्र और प्रधान अमात्य बैठे हैं। एक उत्सव का समारोह दीखता है। नर्तकी गा रही है)

नर्तकी—(गाती है)

मैं कोमल कली सुहानी।

नित चन्दा मुझे बुलाता,

तारों की सेज बिछाता,

इक छलिया भँवरा गाता,
कानों में प्रेम-कहानी
मैं कोमल कली सुहानी।

मैं सौरभ सदा लुटाती,
भँवरों का मन वहलाती,
मैं नित रहती मुस्काती,
हों आँधी ओले पानी,
मैं कोमल कली सुहानी।

काँटों पर नाचा करती,
मैं घूँट सुधा के भरती,
केवल भँवरों से डरती,
जो करते हैं मनमानी,
मैं कोमल कली सुहानी।

पुष्यमित्र—तुम सचमुच एक कोमल कली हो अनुराधा !

नर्तकी—मैं आपकी दासी हूँ महाराज !

पुष्यमित्र—जब आकाश से आनन्द का रस छलकता है, मलय पर्वत से आह्लाद को बयार बहती है, मयूर नाचते हैं; बादलों की टुकड़ियाँ लुका-छिपी खेलती हैं तब तुम मुस्कराती हो अनुराधा ! तुम उस रस को, आह्लाद को, नृत्य को आँखों की प्याली में भर कर मुझे पिलाती हो लेकिन........।

अनुराधा—क्या महाराज ?

पुष्यमित्र—लेकिन जब विपत्तियों का तूफ़ान टूट रहा होता है, बिजली के क्रोध की तलवार की नोक बादलों के पेट में घुस रही होती है, सूर्य और चाँद की आँखों में धूल पड़ रही होती हैं, उस समय-उस समय तुम सहम कर अपना मुँह छिपा लेती हो।

अनुराधा—उस समय भी मैं हँसती हूँ महाराज ! केवल दुनियाँ—

पुष्यमित्र—तुम सचमुच एक कोमल कली हो अनुराधा ! ह: ह ! ह ! उस समय भी हँसना ही चाहिए। अच्छा (पुरस्कार देकर)

युवराज की विजय के उपलक्ष्य में स्वर्णमाला तुम्हें पुरस्कार में मिलती है। अब तुम जाओ।

(अनुराधा कृतज्ञता-पूर्वक पुरस्कार लेकर प्रस्थान करती है)

पुष्यमित्र—मन्त्री !

मन्त्री—महाराज !

पुष्यमित्र—हारकर मीनेण्डर भाग न गया हो। ये लोग कायर होते हैं।

मन्त्री—नहीं महाराज ! युवराज के हाथ कमजोर नहीं।

पुष्यमित्र—तुम ठीक कह रहे हो मन्त्री। युवराज के भुजदण्डों में प्रलय समाई रहती है।

मन्त्री—निश्चय।

पुष्यमित्र—मगध का शासन आज बेजोड़ है मन्त्री ! उसके साथ लोहा लेने के लिए किसी भी शत्रु को दोबारा सोचना पड़ेगा।

मन्त्री—निस्सन्देह महाराज !

पुष्यमित्र—आज दूसरी वार यूनान के खून की लाली चुराई जायगी। मीनैण्डर को वीरता का पाठ पढ़ाया जायगा। आज विदेशियों को फिर से बताना होगा कि भारत एक अभेद्य चट्टान है ! उससे टकराकर उनकी तलवार के पानी का रुख बदल जायगा। आज से दो सौ साल पहले सिकन्दर को भी यही पाठ मिला था।

मन्त्री—सिकन्दर की सेना तो चाँद से खेलनेवाले बालकों और विरही बूढ़ों का समूह था महाराज !

पुष्यमित्र—ह ! ह ! ह ! सोलह आने सत्य है मन्त्री ! बूढ़े या बच्चे, घर की जुदाई पर आँसू बहानेवाले वीर—इन लोगों के समीप वीरता की परिभाषा न जाने क्या होती है। गीदड़ और खरगोशों का झुण्ड चीते की माँद की ओर जाता है मन्त्री !

मन्त्री—चीते के पास स्वयं ही उसकी खाद्य सामग्री पहुँच जाती है महाराज !

लड़ना सचमुच मूर्खता है। धार्मिक असहिष्णुता के अंकुर मगध की मट्टी से निकाल फेंकने होंगे मन्त्री !

(दूत का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन करके) महाराज की जय हो।

पुष्यमित्र—कहो दूत ! कैसे आये ?

दूत—युवराज अग्निमित्र मीनैण्डर को वन्दी बना कर लाये हैं। पुष्यमित्र—उन्हें लिवा लाओ दूत। (मन्त्री से) जाओ मन्त्री ! देखते क्या हो ? शुंगकुल-सूर्य युवराज को सादर लिवा लाओ।

(मन्त्री और दूत का प्रस्थान)

पुष्यमित्र—युवराज ! तुम मेरे दिल पर हाथ रखकर देखो, उसमें केवल तुम हो और मगध का भविष्य है।

(मन्त्री, दूत, युवराज, और वन्दी के रूप में मीनैण्डर का प्रवेश)

युवराज—नमस्कार पिताजी !

पुष्यमित्र—युवराज ? (पुष्यमित्र और युवराज गले मिलते हैं)

(सब यथास्थान बैठते हैं)

पुष्यमित्र—(मीनैण्डर को देखकर) यूनान देश के नृपति !

मीनैण्डर—नहीं, एक वन्दी।

पुष्यमित्र—यूनान के लोग तो वीर और उदार होते हैं महाराज मीनैण्डर !

मीनैण्डर—मैं मगधपति के सामने व्यंग की बौछार सुनने नहीं आया। और यह मैं सहन भी नहीं कर सकता। आप मुझे आजीवन वन्दी बना सकते हैं।

पुष्यमित्र—मगधपति इतना असभ्य नहीं और यदि यूनान के महाराज दो क्षण पहले आये होते तो सम्भव है इससे भी अधिक कुछ होता। (युवराज से) युवराज ! नृपति को मुक्त कर दो और सम्मान-पूर्वक अपनी सीमा से बाहर पहुँचा दो।

अग्निमित्र—जैसी आज्ञा। (उठता है)

पुष्यमित्र—और देखिए महाराज मीनैण्डर! यूनान जाकर वहाँ के लोगों से भारत-नरेश का यह सन्देश दे देना है कि भारत की मिट्टी से इस्पात निकलता है। भारत अजेय है। फिर कभी इधर मुंह न करना।

मीनैण्डर—मगधपति की उदारता और वीरता के आगे मेरा सर झुक रहा है।

(अग्निमित्र के साथ मीनैण्डर का प्रस्थान)

पुष्यमित्र—भारत अजेय है मन्त्री!

मन्त्री—हाँ, महाराज।

(यवनिका)